राजा पन्नालाल गोवर्द्धनलाल ग्रंथमाला

नंददास

प्रथम भाग

संपादक
उमाशंकर शुक्ल, एम० ए०
राजा पन्नालाल स्कॉलर

.न्थ अभी तक कही ठीक से
. ज्ञात हो जायगा कि श्री उमाशङ्क
ादन में कितना

प्रकाशक
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

प्रकाशक
प्रयाग विश्वविद्यालय
प्रयाग

प्रथम संस्करण, अक्तूबर सन् १९४२
मूल्य ६)

मुद्रक
जे० के० शर्म्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

वक्तव्य

सन् १९४० ई० के अक्टोबर में हैदराबाद (दक्खन) जाने का मुझे अवसर मिला। वहाँ श्रीमती सरोजिनी नायडू की कृपा से राजा पन्नालाल जी से मिला। आप का हिन्दी के प्रति प्रेम और उत्साह सराहनीय है। हैदराबाद राज्य मे आप की सहायता से हिन्दी प्रचार का काम बहुत अच्छा हो रहा है। यह आप की हिन्दी श्रद्धा का ही फल है कि आप ने हिन्दी में अन्वेषण और प्रकाशन के लिये प्रयाग विश्वविद्यालय को १२००) रु० का वार्षिक दान देना स्वीकार किया है। विश्वविद्यालय ने इस दान को सहर्ष स्वीकार किया, और जनवरी, सन् १९४१ मे श्री उमाशंकर शुक्ल, एम० ए० अन्वेषण और सम्पादन के काम के लिये नियुक्त किये गये। हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० के निरीक्षण मे ये काम करते रहे हैं। राजा पन्नालाल की उदारता, दानशीलता और साहित्यानुराग से हम बहुत अनुगृहीत हैं।

नन्ददास के सम्पूर्ण ग्रन्थ अभी तक कही ठीक से प्रकाशित नही हुए हैं। भूमिका के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा कि श्री उमाशङ्कर जी ने पुस्तकों के सङ्कलन और सम्पादन में कितना परिश्रम किया है। जिन संस्थाओं और सज्जनों की सहायता से शुक्ल जी को सामग्री मिली है उन की यूनिवर्सिटी कृतज्ञ है।

"राजा पन्नालाल गोवर्द्धनलाल ग्रन्थमाला" मे हिन्दी के सभी प्रमुख कवियों के ग्रन्थों को प्रकाशित करने का विचार है। हिन्दी-विभाग के अध्यापकों और "रिसर्च स्कॉलरों" के सहयोग से, पुस्तकालयों और हिन्दी की अमुद्रित पुस्तकों के संग्रहो की सहायता से, आयोजन सफल होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। हमें सन्तोष है कि यह महत्त्व का

काम प्रयाग विश्वविद्यालय से सम्पन्न हो रहा है। हिन्दी और उर्दू का उच्चतम कक्षा का अध्ययन और अध्यापन यहाँ बहुत वर्षों से हो रहा है। डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में यहाँ अन्वेषण का भी बहुत अच्छा काम हुआ है और हो रहा है। इस विभाग से कई बहुमूल्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और तीन चार विद्वानों को डाक्टर की उपाधि मिल चुकी है। यह उचित ही है कि ऐसे योग्य अध्यक्ष के निरीक्षण में यह ग्रन्थमाला प्रकाशित हो रही है। मुझे पूरा भरोसा है कि ग्रन्थों के पाठ मे, कवि के जीवन-वृत्तान्त मे, काव्य की समालोचना में हमें वह निर्भीकता, औचित्य और योग्यता मिलेगी जिस की एक विद्यापीठ से आशा की जा सकती है।

२९.७.४२. अमरनाथ झा

विषय-सूची

प्रथम भाग

पृष्ठ

द्वितीय भाग



भूमिका

जीवनी

नंददास की निश्चित जन्म-तिथि का हमे कोई ज्ञान नही है। श्री दीनदयालु गुप्त ने अनुमान से सं० १५६४ में इन का जन्म माना है[1]। कांकरौली के श्री द्वारिकादास जी ने इस के चार वर्ष पूर्व नंददास के जन्म-संवत् की कल्पना की है[2]। महाप्रभु वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारा नंददास पुष्टिमार्ग मे दीक्षित हुए इस में संदेह नही किया जा सकता क्योंकि स्वयं कवि द्वारा विरचित ऐसे कई पद प्राप्त होते हैं[3] जिन से यह सूचित होता है कि वे गोसाईं जी के शिष्य थे। गो० गोपीनाथ की असामयिक मृत्यु के वाद सं० १५९१ में विट्ठलनाथ जी गद्दी पर बैठे अतएव इस तिथि के वाद ही नंददास संप्रदाय मे दीक्षित हुए होंगे और विक्रम की १७वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उन का रचना-काल रहा होगा।

अंतर्साक्ष्य के आधार पर नंददास के एक "परम रसिक" मित्र के होने की भी सूचना मिलती है। 'विरहमंजरी', 'रसमंजरी', 'रासपंचाध्यायी' तथा 'दशम स्कंध' के प्रारंभ में कवि ने इस मित्र का उल्लेख किया है जिस से यह ज्ञात होता है कि उन के यह मित्र संस्कृत से अनभिज्ञ थे किंतु वे साहित्यिक अभिरुचि रखते थे और उन्हीं के आग्रह से कवि ने कई ग्रंथों

---

[1] 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' (कांकरौली), द्वितीय भाग, "अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण", पृ० १८

[2] वही

[3] 'पदावली', पृ० ३४१-३४२, पंक्ति २७६-२९९

की रचना की थी। इस मित्र के नाम का कवि ने कोई निर्देश नहीं किया है। कवि की 'नासिकेत पुराण' नामक एक संदिग्ध कृति से यह भी विदित होता है कि यह मित्र नददारा के शिष्य भी थे—

"और जननेजय या कथा (नासिकेत पुराण) सुणी परम गति कों प्रापति भयौ है। और सर्व पाप कटे है। और स्वामी नंददास जी आपण मित्र नैं भाषा करि कहतु है। सिप्य पूछत है गुसाइ जी मेरै अभिलाषा नासकेत पुराण सुणिवा की ईछा वहौत है मो नैं भाषा वारता कहौ।"

श्री दीनदयालु गुप्त ने यह कल्पना की है[1] कि रूपमंजरी ही कदाचित् कवि की वह मित्र थी जिस का कवि ने उल्लेख किया है। 'श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकटच की वार्ता'[2] से इस कल्पना की विशेष पुष्टि भी होती है। उक्त वार्ता के पृष्ठ ३६ पर यह विवरण दिया हुआ है—

"एकदिनां श्रीनाथजी ग्वालियर की वेटी रूपमंजरी हती ताके संग चोंपड खेलवे पधारे चार प्रहर चोंपड खेले और वीन सुने वह वीन आछी वजावत हती चार प्रहर रात्रि वहां हीं विराजे नंददासजी को वाको संग हतो गुणगान आछो करत हती ताके लिये नंददास जी रूपमंजरी ग्रंथ कियो हैं तामे (तामैं) चौपाई धरी है—रूपमंजरी त्रिया को हीयो। सो गिरिवर अपनो आलय कीयो[3]।"

नंददास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने वाले वहिर्साक्ष्यो मे नाभा-दास कृत 'भक्तमाल' की प्रामाणिकता निर्विवाद मानी जाती है। नाभा जी ने नंददास की रस-रीति-संवधी रचना तथा सरस काव्योक्तियों की प्रशंसा करने के अतिरिक्त उन का निवासस्थान रामपुर ग्राम वतलाया है। वे उच्च कुल अथवा सुकुल वंश के थे। "चंद्रहास अग्रज सुहृद",

---

[1] "महाकवि नंददास का जीवन-चरित्र", हिंदुस्तानी, जुलाई १९४०

[2] श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, १९०५ ई०, पृ० २७३

[3] 'रूपमंजरी', पंक्ति २९५

नाभा जी के इस कथन का अर्थ तीन प्रकार से किया गया है—(१) उत्तम हृदय वाले नंददास चंद्रहास के बड़े भाई थे, (२) उत्तम हृदय वाले चंद्रहास नंददास के बड़े भाई थे अथवा (३) नंददास चंद्रहास के बड़े भाई के मित्र थे। इन तीनों अर्थों मे सर्वप्रथम अधिक स्वाभाविक जान पड़ता है अतएव हम कह सकते है कि नंददास के छोटे भाई का नाम चंद्रहास था।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर नंददास के जीवन के संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त होती है। इस वार्ता का एक रूप डाकोर से प्रकाशित सं० १९६० का संस्करण है। सं० १९९८ मे कॉकरौली के विद्या-विभाग द्वारा प्रकाशित 'प्राचीन वार्ता-रहस्य', द्वितीय भाग, मे भी अष्ट सखाओ के विवरण दिए गए है। डाकोर के संस्करण से कवियों के संबंध में अधिक विस्तृत सामग्री देने के अतिरिक्त इस संस्करण की एक विशेषता यह भी है कि इस में गो० हरिराय कृत 'भावप्रकाश' की टिप्पणियों के साथ कवियों के वृत्त पाए जाते है। हरिराय जी गोकुलनाथ जी के समकालीन माने जाते है अतएव यह आशा की जाती है कि उन के उल्लेखों से अष्टसखाओं की जीवनियों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' मे जो वृत्त नंददास का दिया हुआ है उस से विदित होता है कि वे रामपुर निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे और उन की गणना 'अष्टछाप' मे की जाती थी। वे गो० तुलसीदास के छोटे भाई थे और उन के समान ही पहले रामानंदी संप्रदाय मे दीक्षित हुए थे। आमोद-प्रिय स्वभाव के होने के कारण वे एक बार हठपूर्वक एक यात्रियों के संघ के साथ काशी से रणछोड़ जी के दर्शनो के लिए रवाना हुए। मथुरा से उन्हों ने संघ का साथ छोड़ दिया और श्री द्वारिका जी के लिए अकेले ही चल पड़े। मार्ग भूल जाने के कारण वे "सिंहनंद" नामक ग्राम पहुँचे जहाँ एक "क्षत्री" की स्त्री के रूप पर इतने आसक्त हो गए कि वे अपना लक्ष्य ही भूल गए। बाद मे गो० विट्ठलनाथ जी ने उन्हे बुला कर संप्रदाय में दीक्षित किया और उन का

मोह छूटा। गोसाईं जी के साथ एक वार वे श्रीनाथ जी के दर्शनों के लिए गए और तत्पश्चात् छ: मास तक परासोली मे सूरदास जी के साथ रहे। तुलसीदास जी ने नददास को अपने पास बुलाने के लिए एक बार काशी से पत्र लिखा और बाद मे वे स्वयं व्रज गए भी। उक्त परासोली स्थान पर दोनों व्यक्तियो की भेंट हुई। बहुत समझाने पर भी नंददास जी व्रज छोडने के लिए उद्यत नही हुए। एक दिन दोनों भाई गिरिराज पर श्रीनाथ जी के दर्शनो के लिए गए। नंददास के आग्रह पर श्रीनाथ जी ने धनुर्धारी राम के स्वरूप मे तुलसीदास को दर्शन दिए। गोकुल जाने पर गोसाईं जी से साक्षात्कार के समय भी इसी प्रकार की घटना हुई। नंददास की अटल कृष्ण-भक्ति देख कर उन के अग्रज को यह निश्चय हो गया कि उन का काशी लौट जाना असंभव था। विवश हो कर वे स्वयं वापस चले गए। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के अनुकरण मे नंददास ने भी अपने इष्टदेव की श्रीमद्भागवत दशम स्कंध मे दी हुई कथा का भाषानुवाद किया जिस पर मथुरा के कथावाचक ब्राह्मणो ने गोसाईं जी से आपत्ति की क्योकि नंददास के ग्रथ की लोकप्रियता के कारण उन की आजीविका की हानि होती थी। फलस्वरूप गोसाईं जी की आज्ञा से नंददास ने रास-लीला के अंश तक तो रख लिया और अवशिष्ट ग्रंथ यमुना जी को समर्पित कर दिया। उपर्युक्त 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' के छठे प्रसंग में नंददास की मृत्यु का वर्णन है। एक बार मानसी गंगा के समीप बादशाह अकबर ठहरे हुए थे। तानसेन ने उन के सामने नंददास का प्रसिद्ध पद—'देखो री देखो नागर नट नृत्यत कालिंदी के तट.....नंददास गावत तहां निपट निकट'[1] गाया। अकबर ने बीरबल द्वारा नंददास को बुलवाया और उन से इस पद का अभिप्राय बतलाने को कहा। अकबर के डेरे पर एक वैष्णव सेविका भी थी जिस से नंददास का विशेष स्नेह था। नंददास ने अकबर से

---

[1] 'पदावली', पृ० ३३३

कहा कि आप अपने डेरे की अमुक लौंडी से इस पंक्ति का अर्थ समझ सकते हैं। जब अकबर वहाँ से उठ कर उक्त सेविका के पास गए और उस से अपना प्रश्न पूछा तो वह पछाड़ खा कर गिर पड़ी और इधर नंददास जी भी अपने धर्म के रहस्य को गोप्य रखने के अभिप्राय से शरीर छोड़ कर लीला को प्राप्त हुए। इस विवरण के अतिरिक्त गो० हरिराय जी के 'भावप्रकाश' से यह ज्ञात होता है कि नंददास श्रीनाथ जी की दिवस की लीला में 'भोज' सखा के अवतार थे और "रात्रि की लीला में श्रीचंद्रावलीजी की सखी 'चंद्ररेखा' इनको नाम है"[1]।

सोरों, जिला एटा, में पाई जाने वाली कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ प्रकाश मे आई हैं[2] जिन से एक ओर तो वार्ताओं के कुछ विवरणों की पुष्टि होती है, दूसरी ओर वल्लभ-संप्रदाय में प्रविष्ट होने के पहले कवि के प्रारंभिक पारिवारिक जीवन की बातों का ज्ञान होता है। इन पोथियों में 'रामचरितमानस' की 'अरण्यकांड' तथा 'बालकांड' की सं० १६४३ की दो प्रतियाँ हैं जिन की पुष्पिकाओं से तुलसीदास तथा नंददास के भ्रातृ-भाव और नंददास तथा कृष्णदास के पिता-पुत्र होने का समर्थन होता है। कृष्णदास कृत 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' की प्रति का रचना-काल सं० १६७० तथा लिपि-काल सं० १८७० है। इस ग्रंथ के अंत मे कृष्णदास ने अपनी वंशावली दी है जिस से ज्ञात होता है कि आधुनिक सोरो के समीप ही रामपुर ग्राम मे सनाढ्य शुक्लो का एक परिवार रहता था। इस परिवार के पूर्वज नारायण पंडित थे। उन के चार पुत्र थे—श्रीधर, शेषधर, सनक तथा सनातन। सनातन के पुत्र परमानंद तथा प्रपौत्र आत्माराम तथा जीवाराम थे। इन मे आत्माराम के पुत्र तुलसीदास तथा जीवाराम के नंददास थे। नंददास के एक छोटा भाई चंद्रहास भी था। उन के पुत्र

[1] 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' पृ० ३२६

[2] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास', पृ० ८०

कहा जाता है कि हरिराय जी ने ही औरंगज़ेब के राजत्व-काल के अत्याचारों के उल्लेख बढ़ा दिए होगे क्योंकि वे उक्त घटना के बहुत समय बाद तक जीवित रहे थे। इन तीनो प्रकार की वार्ताओ तथा कुछ अन्य बहिरंग प्रमाणों के आधार पर श्री दीनदयालु गुप्त ने यह मत स्थिर किया है कि यद्यपि २५२ तथा ८४ वार्ताएँ गोकुलनाथ जी द्वारा लिखित नहीं हैं फिर भी वे उन के द्वारा कथित अवश्य है और वे उन के जीवन-काल मे ही लिपिबद्ध कर ली गई थी। कॉकरौली के विद्या-विभाग की सं० १६९७ की ८४ तथा 'गोसाई जी के चार सेवकन की वार्ता' की प्रति के लिपि-काल के समय गोकुलनाथ जी विद्यमान थे।

उपर्युक्त वार्ता साहित्य पर स्वतत्र रूप से विचार करते समय सव से बड़ी कठिनाई यह है कि १३५ वर्ष के अंतर्गत लिखे हुए तीनों 'सस्करणों' का पाठ हमारे सामने नही है। 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' मे दिया हुआ पाठ सं० १७५२ की भावना वाली प्रति का है। इस के पहले की पोथियों मे कवियों के वृत्तो मे कौन कौन उल्लेख छूटे हुए है अथवा अधिक हैं यह जानना आवश्यक है। स० १६९७ की प्रति का जो ब्लॉक इस पुस्तक मे दिया हुआ है उस मे नंददास की वार्ता का प्रारंभिक अंश इस प्रकार है[1]—

"अब श्री गुसांई जी के सेवक नंददास सनोढिया ब्राह्मण तिनके पद गाईयत हे सो वे पूर्व में रहते तिन की वार्ता।"

सं० १७५२ की भावना वाली प्रति में उक्त अंश यो दिया है[2]—

"अब श्रीगुसांईजी के सेवक नंददासजी सनाढ्य ब्राह्मण, रामपुर में रहते, जिन के पद अष्टछाप में गाइयत है तिनकी वार्ता।"

'रामपुर' तथा 'अष्टछाप मे' ये शब्द सं० १६९७ की प्रति मे नही है। इसी प्रकार अन्य अंतरों का होना भी संभव है। इन अंतरों से अपरिचित

---

[1] 'प्राचीन वार्ता-रहस्य', वक्तव्य, पृ० ११ के सामने
[2] वही, पृ० ३२६

होने पर हमारा वार्ता साहित्य का अध्ययन अधूरा ही कहा जायगा। 'संस्करण' शब्द किस निश्चित अर्थ में लिखा गया है इसे भी हम भली प्रकार नहीं जानते। उक्त तीनों संस्करणों का जो समय दिया गया है वह जिस आधार पर अवलंबित है वह भी ज्ञातव्य विषय है। सं० १६९७ की वार्ता से प्राचीन किसी भी प्रति का उल्लेख नहीं किया गया है। इस से यह विदित होता है कि स० १६४५ से सं० १६९० तक के प्रथम 'संस्करण काल' के स्थिर करने का कोई दूसरा ही आधार होगा। जो हो, जहाँ तक नंददास जी की वार्ता का संबंध है हम इतना दृढ़तापूर्वक कह सकते है कि सं० १६९७ में उन का सनाढ्य ब्राह्मण तथा तुलसीदास जी का छोटा भाई होना प्रसिद्ध था। इस वार्ता का रचयिता अथवा लिपि-कार चाहे जो रहा हो, गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु (स० १६८०) के १७ वर्ष बाद इस उल्लेख का मिलना एक महत्त्वपूर्ण बात है।

सोरों में पाए जाने वाले ग्रथों की बहिरंग तथा अंतरग परीक्षा डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है[1]। गुप्त जी के अनुसार बालकांड की पुष्पिका की अतिम पंक्ति "वासी नददास पुत्र कृष्णदास हेत लिषी रघुनाथदास ने कासीपुरी में" के ऊपर एक आड़ी रेखा खिची हुई है। इस पक्ति के नीचे पुन तीन रेखाएँ खींची गई है। ऐसा जान पड़ता है कि इन तीन रेखाओं को यह सूचित करने के लिए खींचा गया है कि ग्रंथ की समाप्ति इस पंक्ति के पहले न हो कर इस के बाद में हुई है। इस पंक्ति का हस्तलेख ऊपर की पक्तियों के लेख से मेल नहीं खाता है। अरण्यकांड की पुष्पिका में सं० १६४३ के '१६४' अंकों पर दुबारा स्याही फेरी गई है। ऐसा अनुमान होता है कि पहले इन अंकों के स्थान पर कुछ और अंक थे जिन्हे मिटा कर '१६४' लिख दिया गया है। 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' के विषय में डा० गुप्त ने यह बतलाया है कि इस के शब्दो की शिरोरेखाएँ पृथक् कर के लिखी

---

[1] 'तुलसीदास', पृ० ८६-९५

जिन्हो ने अष्ट सखाओ की वार्ताओ पर 'भावप्रकाश' लिखते हुए नंददास के संबंध में लिखा है कि "जिन के पद अष्टछाप मे गाइयत है"[१]।

कवि कृत प्रसिद्ध ग्रंथ

फ़ासीसी विद्वान् तासी ने अपने इतिहास (१८७० ई०) में नंददास के निम्नलिखित ग्रंथो का उल्लेख किया है[२]—

१ पचाध्यायी
२ नाममजरी
३ अनेकार्थमंजरी
४ रुक्मिनी मंगल
५ भँवरगीत
६ सुदामा चरित्र
७ विरह मंजरी
८ प्रबोधचंद्रोदय नाटक*
९ गोवर्द्धन लीला*
१० दशमस्कंध
११ रासमजरी*
१२ रसमजरी
१३ रूपमंजरी
१४ मानमजरी

'शिवसिंहसरोज' (१८८३ ई०) में दो नए ग्रंथों के नाम है—

१५ दानलीला*

---

[१] 'प्राचीन वार्ता-रहस्य', पृ० ३२६

[२] 'इस्त्वार दा ला लितेरत्यूर ऐंदूई ए ऐंदुस्तानी', भाग २, द्वितीय संस्करण, पृ० ४४५

१६ मानलीला*

डा० ग्रियर्सन कृत 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदोस्तान' (१८८९ ई०) में उल्लिखित सात ग्रंथ दी हुई सूची के अंतर्गत ही हैं। 'मिश्रबंधु-विनोद' के द्वितीय संस्करण (१९२९ ई०) में ६ नए नाम दिए गए हैं—

१७ हितोपदेश*

१८ ज्ञानमंजरी*

१९ नामचिंतामणिमाला

२० नासिकेत पुराण

२१ श्यामसगाई

२२ विज्ञानार्थप्रकाशिका*

स्वर्गीय पं० रामचंद्र शुक्ल के इतिहास के परिवर्द्धित संस्करण (१९४० ई०) में एक नया नाम दिया है—

२३ सिद्धांतपंचाध्यायी

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, की प्रकाशित तथा अप्रकाशित खोज रिपोर्टों मे चार नए ग्रंथों का उल्लेख है—

२४ जोगलीला*[1]

२५ फूलमंजरी*[2]

२६ रानी मंगो*[3]

२७ कृष्णमंगल*[4]

श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली, द्वारा निम्नलिखित एक अन्य हस्त-लिखित ग्रंथ प्राप्त हुआ है—

---

[1] खो० रि० सन् १९०६-०८, संख्या २०० (डी)

[2] खो० रि० सन् १९२९-३१

[3] वही

[4] खो० रि० सन् १९३५-३७

२८ रासलीला*

डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा दो मुद्रित ग्रंथों की सूचना मिली है—

२९ वाँसुरीलीला*[1]

३० अर्थचंद्रोदय*[2] (पद्यबद्ध शब्दकोष)

उपर्युक्त सूची मे दिए हुए ग्रंथों मे * चिह्न वाले ग्रंथों के नंददास कृत होने मे अनेक कठिनाइयाँ है, उन का संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जा रहा है।

'नाममंजरी' (२), 'मानमजरी' (१४) तथा 'नामचिंतामणिमाला' (१९) एक ही ग्रथ के तीन नाम है। 'प्रबोधचंद्रोदय नाटक' (८), 'रासमंजरी' (११), 'मानलीला' (१६), 'ज्ञानमजरी' (१८), 'विज्ञानार्थ-प्रकाशिका' (२२), 'वाँसुरीलीला' (२९) तथा 'अर्थचंद्रोदय (३०), के नाम ही नाम सुने गए है। 'रासमंजरी' कदाचित् 'रसमंजरी' का ही परिवर्तित नाम है। 'विज्ञानार्थप्रकाशिका' को मिश्रबंधुओ ने छतरपुर में कही देखा था। उन के अनुसार यह ग्रथ किसी संस्कृत ग्रंथ की भाषाटीका है। 'अर्थचंद्रोदय' संभवत. 'अनेकार्थ' अथवा 'मानमंजरी' का ही दूसरा नाम होगा क्योंकि यह भी 'पद्यबद्ध शब्दकोष' वतलाया गया है।

'सुदामा चरित्र' (६) की एक आधुनिक प्रति पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी के हस्तलेख मे लिखी हुई काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अधिकारियों से प्राप्त हुई है। खोज मे अभी तक इस ग्रंथ की कोई भी प्रति प्रकाश में नही आई है। सभा की प्रति की परीक्षा करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि यह छोटा सा ग्रंथ कवि की प्रारंभिक कृति है क्योकि नंददास की काव्य-

---

[1] प्रकाशक तथा मुद्रक अब्दुर्रहमान खाँ, कानपुर, २९. १०. ८०, प्रथम संस्करण, पृ० १८, मूल्य)॥

[2] प्रकाशक होतीलाल, फ़तेहपुर सीकरी, मुद्रक श्रेष्ठ प्रेस, आगरा, १४. ५. १७, मूल्य ‌‌-)॥

शैली से साम्य होने के साथ ही इस ग्रंथ मे पर्याप्त शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। इस की यदि कुछ पोथियाँ प्राप्त हो सकें तो इस के कवि कृत होने अथवा न होने के संबंध में निश्चय किया जा सकता है। परिशिष्ट १ (घ) मे सभा से प्राप्त 'सुदामा चरित' की प्रति की प्रतिलिपि दी गई है।

'नासिकेत पुराण' (२०) नामक गद्य ग्रंथ के भी कवि कृत होने के संबंध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। सभा की खो० रि० सन् १९०९-११, संख्या २०८ (ए), मे नीमराना के 'माधव स्कूल' के हिंदी अध्यापक पं० प्यारेलाल के नाम से इस ग्रंथ की सं० १८१३ की एक प्रति का उल्लेख मिलता है। इस की दो खंडित प्रतियाँ डा० भवानी शंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई है जिन मे एक का लिपि-काल अज्ञात है तथा दूसरी सं० १८५५ की लिखी है। एक अन्य प्रति लेखक को भरतपुर राज्य पुस्तकालय में मिली है जिस की पुस्तकालय संख्या '१०ग' है और जो सं० १७९५ की लिखी है। इन तीनो पोथियो मे ऐसे उल्लेख विद्यमान है जिन से यह प्रकट होता है कि नासिकेत की कथा नंददास अपने मित्र अथवा शिष्य से कह रहे है। कवि की प्रामाणिक कृतियों मे भी इस मित्र के दर्शन होते है जिस से यह धारणा होती है कि इस ग्रंथ के रचयिता भी नंददास होंगे। प्राप्त तीनों प्रतियों की भाषा मे बहुत अधिक भिन्नता है। एक ही बात को तीनों ने बहुधा इतने अंतर से लिखा है कि साधारणतया इन के पाठ को स्थिर करना बहुत कठिन हो जाता है। परिशिष्ट १ (ङ) मे इस ग्रंथ के तीन उद्धरण दिए गए है। इन मे से (१) व (२) डा० याज्ञिक की उस प्रति से उद्धृत है जिस का लिपि-काल अज्ञात है। उद्धरण (३) भरतपुर राज्य पुस्तकालय की सं० १७९५ की प्रति से लिया गया है।

'गोवर्द्धनलीला' (९) की एक प्रति पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी से लेखक को मिली है जो उन्ही के हस्तलेख मे लिखी है। जैसा कि ग्रंथ के नाम से प्रकट है इस मे कृष्ण के गोवर्द्धन-धारण की कथा वर्णित है। यह

कथा कवि कृत 'दशम स्कंध', अध्याय २४ व २५ में भी है। 'दशम स्कंध' की कथा और इस ग्रंथ के वर्णन को मिलाने से यह प्राय निश्चित सा हो जाता है कि ये दोनो कथाएँ एक ही है। अध्याय २४ व २५ की लगभग ४० पंक्तियां साधारण अंतर के साथ इस ग्रंथ में भी है। संभवत. 'दशम स्कंध' की इस लीला को कभी पृथक् रूप से लिखा गया था और पीछे से किसी ने आदि और अंत में कुछ चौपाइयाँ जोड़ कर इसे ग्रंथ का रूप दे दिया था। नीचे इस ग्रंथ के तीन उद्धरण दिए जाते है जो क्रमशः आदि, मध्य और अंत से लिए गए है—

श्री गुर चरन मनाओं, गिरि गोवरधन लीला गाओं।
कल मल हरनीं मंगल करनी, मन हरनी श्री सुक मुन वरनी।
जग्ग करन जब गोप कलोले, तिन प्रत साँमल नुन्दर बोले।
तात कहौ यें बात कहा है, भुमन माँहि आनंद महा है।
सैन्द कबउ कर मकरै दूकी, सो असाइ कर मकरै लूकी।
मंद मंद हंस नंद कही तब, बात तात सौं कही अपुन सब।
मघवा है मेघन कौ राजा, यैं उद्यम सब उनके काजा।
बरखें जल तृन उपजै भारी, गॉइन के गन होइँ सुखारी।
तब बोले निज नाम उमाँहें, मुरलीधर गिरधर भयौ चाँहें।
जहँ यैं गिरि गोबरधन सोहै, इन्द्र बराक या आगें को है।

× × ×

कान्ह कही तुम देखौ काजा, प्रगट भयौ है गिर कौ राजा।
जितनों भोजन ब्रज ते आयौ, गिर रूपी हरि सबरौ खायौ।
भई परतीत आँनद उर भारी, करैं प्रदिच्छन नर औ नारी।
इक मूरत हरि भोजन करई, इक लोगन सँग फेरी फिरई।
फिरत जु छबि बाढ़ी तिहँ काला, गोबरधन मनु पैहेरी माला।
गिरि वर कह्यौ कछू भय नाहीं, फूले गोप न अंग समाहीं।
सुन्यों इन्द्र मेरौ जग मेंटा, यैं मद मत्त नंद कौ बेटा।

ताके बल मो सों करखाती, हरि है कहा ? गोप का बाती।
जो कोऊ उन पच्छ करचारे, तो रन चँहें सुख सीइँ अपारें।
झूंठहि की जो नाउ बनावें, झूंठ मॉठ कौ कुंटम चढ़ावै।
ऐनेंई गोप श्री कृष्ण भरोलें, महा वैर कीनों है मो सें।
अब देखी कैसी सिखराऊँ, गोकुल गॉमहि खोद वहाऊँ।
बोले मेघन के गन सोई, जिनके जल जग परलें होई।

× × ×

निकसे सब जब गिरधर भॉख्यौ, गोबरधन फिर तहँ ही राख्यौ।
प्रेम भरीं बनता जुरि ऑई, वारें अभरन लेत बलाई।
घुर रहीं जसुमत लेत बलाई, इत घुर रह्यौ बड़ौ बल भाई।
ऊपर ठाड़ौ नंद अनंदै, चूंमत अपनों आँनद कंदै।
यँ नागर नगधर की लीला, सुधा सींग्र सम सुन्दर सीला।
मन क्रम बचन याहि अनुरागैं, ताहि मुकत अति फीकी लागैं।
अरथ धरम श्री कामजीत सुख, निपट कटुक ते कौंन धरै सुख।
केवल अधिकारी रस जानें, अल बिन कमलन को पैचॉनै।
नवल किसोर सुन्दर गिरधारी, स्रवन नैन मन अमृत भारी।
नंददास कों इतनों कीजै, पावन गुन गावन रत दीजै।

'दानलीला' (१५) तथा 'रासलीला' (२८) नाम की दो पोथियाँ देखने मे आई है। इन मे से पहले ग्रंथ की प्रति काशी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के विद्यार्थी श्री महावीर सिंह गहलौत से प्राप्त हुई है। इन ग्रंथो की भाषा-शैली तथा काव्योक्तियाँ कवि की प्रामाणिक कृतियों से इतनी भिन्न है कि इन्हे नंददास कृत मानने मे विशेष अडचन पड़ती है। इन के रचयिता 'नंददास' 'रासपंचाध्यायी' अथवा पंचमंजरियों आदि के नंददास से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं। रास आदि के वर्णन मे कवि ने अपने ग्रंथो मे जिस चुनी हुई शब्दावली तथा जिन बँधी हुई उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया है वे इन शिथिल रचनाओ में

वैकुंठ तजि व्रज में बसे हरी गोपिन कुं दीयो दांन ॥ सकल अंग सहित प्रगटित सखी कृष्नस्व ये भगवांन ॥३॥ चकवा चाहत चंद कुं कमल मधुप गुंजार ॥ चातुक जलधर मीन जल त्यों हरि प्रांन आधार ॥४॥ कोल चौरासी व्रज्य भलो कमल विकसीत वहु जात ॥ कुंज निकुंज द्रुम बेलि विच बिच क्रीडत सांवल गात ॥५॥ जांई जुई चंपक मोगरो केवरो अनेक सुगंध्य प्रफुल्लित बन वीराजही त्रिविध पवन वहे मंद ॥६॥ हंस मोर चकोर शुक चातुक कोकि गांन ॥ खग मृग पंखी राजही अति प्रफुलित भगवांन ॥७॥ नटवर वेद धर्यो हरी मस्तक मुगट विशाल ॥ पीत वसन मकराकृति कुंडल उर सोहें बनमाल ॥८॥ ढाल ॥ उर सोहे बन माला ॥ प्रभु चंचल नेंन विशाला ॥ भृगुटी धनुष सो भांय लोचन शर मन बेधांय ॥ भाल तिलक अति शोभे ॥ अलक मधुप चित चोभे ॥ कुंडल रवि शशि ग्योती (जोती) ॥ नकवेसरी लटकतु मोती शर दशाशि मुख राजे ॥ छवि देखी मन्मथ लाजे ॥ चाल्य ॥ लाजें मन्मथ निरखि शोभा कोटि कांम उद्योतही ॥ अरुन अधर ही दंत दाडिम चिवुक ही राज्यो तिही ॥१॥ कंठ कौस्तुभ मनी ज ल ह ल गुंज मुक्ता माल ही ॥ वनमाल अरू वेंज यंति माला रत्न हार बिशाल ही ॥२॥ स्यांम पीत अे मानुं जलधर पीत पट घन दामिनी ॥ अजांन भुज कर पोंहोंची× द्रु मोरली सोहामनी ॥३॥ किंकिनी कटि मधुर वाजे रत्न कंचन सों जरे ॥ रुनझुन नूपुर घुघरु घमके । रहे हरी वन मध्य खरे ॥४॥ सुंदर चरन सरोज कोमल चंद्रमा नव अंगुरी ॥ नंददास दयाल व्रजपति वेनु वजावें श्रीहरि ॥५॥"

× × ×

"आओ बेठो स्कंध उपर जब नंद नंदन हसी कही ॥ सावधांन होय जब चढन लागी ॥ नेंननी देखें नही ॥ विरह दुख अति सिंधु मानु (?) हरी बिनां एक पल क्यों रहु ॥ एह घोर बन मे अकेली तजी गए कहो बिरहोनी काहा कहु ॥ तारी दें दें हसी भाम्यनी तुम हम सब एकत भई ॥ सकल बन में ढुढती सब मिलि यमुनां त्रट गई ॥ लोचन जल मुष गुन

गावें ॥ उच्चें स्वरनु पुकारही ॥ मंडली रच बैठी अबला कृष्न कृष्न उच्चारही ॥ दीनदयालु दया मनु जांनि ॥ बोहोत दुष पाई सबें ॥ बिरह दुख अति सह्यो न जांई ॥ प्रिया दरस दीजे अबें ॥ मंडली मध्य प्रभु प्रगटे ॥ स्याम तन शोभा घनी ॥ कोटि काम उद्योत नष शिष विराजित त्रिभुवन धनी । देष दोरच सबें पलटांई ॥ गोपिन मन भायो कियो ॥ अलि घन देय के नीरखें ॥ शीतल भई सब दुष गयो ॥ परमारथ एह भक्त जांनु धंन्य गोपिन तूम षरी ॥ एसी प्रीत्य कहु नही देषी ॥ प्रसन्न मुष हसि कें कही ॥ रास मंडल फिरी रच्यो हरी यमुना पुलिन विराजही ॥ कंठ बाहु देत चूंबन कोटि कंदर्प लाजही ॥१०॥ मधुरें स्वर आलापति गांवति मिलवति तांनही ॥ हस्तक भेद देखावनी मध्य निरतत श्री भगवांन ही ॥ धरनि नभ शशि पशु पंखी जीव स शीतल भये दई आज्ञा स्यामसुंदर सुंदरी सब भुवन गये ॥ सुरि नर मुनि पावें नही निगम नेति नेति नेति कहें ॥ नंददास दयाल हरि कों अगाध्य यश कवि काहा कहे ॥ इति श्री नंददास जी कृत रासलीला संपूर्ण ॥"

'राजनीति हितोपदेश' (१७) की तीन हस्तलिखित प्रतियों का पता चला है—दो प्रतापगढ़ राज्य के पुस्तकालय मे सुरक्षित है[1], तीसरी छतरपुर के किन्हीं बाबू जगन्नाथप्रसाद के पास बतलाई जाती है[2]। लेखक ने पहली दो प्रतियों की परीक्षा की है। इन मे एक प्रति अंत से खंडित है, दूसरी सं० १९३३ की लिखी है। इस की पृष्ठ-संख्या २८० है और इस के आदि अथवा अंत में किसी कवि के नाम का उल्लेख नही है। पुष्पिका में लिपि-कार ने ग्रंथ को नंददास कृत बतलाया है—

"जौं लौं सुर घर कनक गिरि फिरि सूर्य औ चंद ।
तौं लौं नाराएन कथा सुनौं सुजान अनंद ॥

---

[1] खो० रि० १९२६-२८ ई० (अप्रकाशित)

[2] खो० रि० १९०५ ई०, संख्या ३६

इति श्री हितोपदेसे (स्वा)मी नंददास कृते चतुर्थ कथा समाप्त. . ."

छतरपुर की प्रति का जो उद्धरण सभा की रिपोर्ट में दिया है उस के अंतिम दोहे मे 'अनंद' के स्थान पर 'नंद' पाठ है—

जौ लौ सुर घर कनक गिरि फिरि सूरज औ चंद ।
तौ लौ नारायन कथा सुनौ सुजन जन नंद ॥

तुकात के विचार से 'नंद' पाठ अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। यह ग्रंथ दोहा-चौपाई मे लिखा गया है और नारायण पंडित कृत 'हितोपदेश' नामक सस्कृत ग्रथ का उत्था है। इस के मंगलाचरण से ही इस के प्रसिद्ध नंददास कृत होने मे संदेह होता है—

सिद्धि साधु के काज मो सो हर करै कृपाल ।
गंग फेन की लीक सी सिर ससि कला विशाल ॥

वल्लभ संप्रदाय मे शिव का स्थान भगवान् के प्रमुख भक्तों मे है, उन्हे उपास्य-देव के रूप मे नही ग्रहण किया गया है। नंददास के किसी ग्रंथ के मंगलाचरण में शिव की स्तुति नही है। नीतिपरक रचनाओं की ओर भी कवि का कोई अनुराग लक्षित नही होता है। मुरली के मादक आह्वान तथा गोपियो की अगाध विरह-व्यथा मे डूबे हुए कवि-हृदय का ध्यान कभी चूहे और बिल्ली द्वारा कही हुई इन कथाओं की ओर भी गया होगा इस की कल्पना अत्यत दुरूह है। इस ग्रंथ की भापा-शैली प्रौढ़ अवश्य है किंतु वह नददास की शैली से नितात भिन्न है। अतएव यह ग्रंथ किसी दूसरे नददास का ही कहा जायगा। नीचे इस ग्रंथ के दो उद्धरण दिए जाते है जो प्रतापगढ राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित तियों से लिए गए है—

"श्री गणेशायनमः। दोहा॥ सिद्धि साधु के काज मो सो हर करै कृपाल। गंग फेन की लीक सी सिर ससि कला विशाल ॥१॥ सुनु हित हित उपदेश यह देत वचन रचनानि। देवन की वानी लहै राजनीति पहिचानि ॥२॥ अजर अमर की भांति सो विद्या धनहि वढाउ। मीचु मनो

ओटी गहे देत न वार लगाइ ॥३॥ विद्या धन सव धनन मे संत कहत सरदार ॥ मोल चढो नहि घटत घर किये न पैए मार ॥४॥ विद्या देत बिनीत करि विनौ वडाई देत। वडे भये धनु पाइए दान भोग धन हेत ॥५॥ शस्त्र शास्त्र विद्या दुविध धनु औ धर्म न जाइ। विरधाई पहिले हंसी दूजी सदा सोहाइ ॥६॥ दारुन विपति समुद्र सो विद्या नही समान। लै पहुचावै नीचहूं लाभ भाग परिमान ॥७॥ विद्या नदी नदी त्र पु नी च हि मिलवै हाल। दारुन दानि दया करै होइ जु भागु कृपाल ॥८॥ प्रथमहि वाको नाउ जो धरो नए घट डारि। वाल कथा छल कहत हौ राजनीति सव झारि ॥९॥ मित्र लाभ फिरि सुहृद को भेदरु विग्रह संधि। पंच तंत्र से ग्रंथ पढि चारि कथा में वंधि ॥१०॥ चौपाई ॥ भागीरथी तीर एक ग्राम। पटना कहत ताहि को नाम ॥ नृपति सुदरसन मोहत तामे। स्वामी के गुन वरनो जामे ॥ एक काल काहू द्वै दोहा। पढे सुने राजा मन मोहा ॥ जासो सव संसै मिटै अनदेखो सो देखु ॥ पढिवो पोढी आंषि है अपढ अंध करि लेषु ॥११॥ चोपाई ॥ जोवन धन प्रभुता अविवेक। एको अनरथ करै अनेक। एक ठौर जो उपजै चारि। कछू दिनन में डारै मारि ॥ यह विचारि राजा भो दीन। सुत मेरो विद्या को हीन ॥ केहि विध ए मेरे सुत पढही। राजनीति सो दिन दिन वढही ॥ कौन काज ऐसे सुत कीन्हे। जो न पढै नहि धर्महि चीन्हे ॥ कानी आंषी केवल पीरा। नित उठि आवै कीचर नीरा ॥ दोहा ॥ एकै सावु पढ्यो भलो पुत्र सिंह सरदार। कुल उजियारो चंद्र ज्यों करै धरै सिर भार ॥१२॥ गुनी गनत नहि जाहि की लीक सु अगमनि लोनि। पुतरौती सुत ताहिते होति सुवंध्या कौनि ॥१३॥"

× × ×

"ताते मेरे मन यह आई। तोसों वात कहों यह भाई ॥ असु मंद गदबो × जानी। तौ लों कानक तराजू आनी ॥ सतिए कहै भेद हजारु। सतिहि की दीजै पनि भारु ॥ ताते सति पथ करि लीजे। कचन संधि शहुन करि दीजै ॥ चक्रवाक सरवंग्यहु कहाँ। रापी वात गीध की

सही ॥ तव फिरि अलंकार उपहार । दे गीधहि मोतिन के हार ॥ विदा करी मंत्री लै चल्यौ । चक्रहि संग कियो हलभल्यौ ॥ गीध मोर सों भेंट कराई । कही चक्रवाक पिथहि राई ॥ चित्र वरन अभरन ह दीन्हो । चक्रवाक को ग्रादर कीन्हो ॥ कीन्ही विदा गीध दै साथ । करि सनमान आपने हाथ ॥ कीन्हीं संधि मिटी × × । आयौ राह हंस के कटकै ॥ दीरघदरसी तव यह कह्यौ । राजइ हांनहि कारज रह्यौ ॥ विंध्याचल चलिए चढि धाई । जाइ अपने घर सुष पाइ ॥ दुनौं गए आपने राज । सुष सों करै आपनो काज ॥ विस्नुसर्म कालक सो कही । आयसु करी सुनो चही ॥ राजपुत्र वोले जिय जानि । विस्नुसर्म को आदर मानि ॥ दुज वर जो राजा को चही । सोई कथा आप यह कही ॥ दूजो भयौ जन्म अवतार । सुनियौ राज रग व्यवहार ॥ गयो जो ग्यानु फेरि अव भयौ । विस्नुसर्म तव देत असीस । संधि करो सव धरा धरीस ॥ विपति दूरि साधन की जाइ । मुदित न कीरति सदां सोहाइ ॥ नीति नई नारी लगु जगी । चुंवन करै मंत्रि मुष लागी ॥ मंत्री × सदा मन धरै । महाराज सुष अन × करै । दोहा ॥ जौ लौ गोरि गिरीस को × × × × × जौ लौ सुरधर कनक गिरि फिरि सूर्य औ चन्द ॥ तौ लौ नाराएन कथा सुनौ सुजान आनंद ॥ इति श्री हितोपदेसे (स्वा)मी नंददास कृते चतुर्थ कथा समाप्त सुभमस्तु । सम्वत १९३३ ॥ साके ॥ १७९॥ मिती पूस कृस्न पक्षे ११॥ सुम्वार लिखितं जो प्रति देष सो लीषं मम दोष न देअते ॥ श्री राम राम × × । श्री रामदूत हनिवताय नमः ।"

'जोगलीला' (२४) के नददास कृत होने का एकमात्र उल्लेख सभा की सन् १९०६-०८ की रिपोर्ट, संख्या २०० (डी) मे हुआ है । सन् १९३८-४० की अप्रकाशित रिपोर्ट मे इस ग्रंथ की सूचना संदिग्ध रूप से 'उदय' कवि के नाम से भी दी गई है । काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय में संख्या २९८ पर इस ग्रंथ की एक प्रति सुरक्षित है । इस के अतिरिक्त जिल्द संख्या

३९७/१३ तथा ३०२/१३ की दो पोथियाँ डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं। सभा की प्रति का प्रथम तथा अंतिम छंद इस प्रकार है—

एक समै मन मित्र मोहि अज्ञा यह दीनी।
याही ते मति उंकति जोगलीला तव कीनी॥
शिव सनकादिक सारदा नारद सेस महेश।
देहु बुधिबर ऊंदै उंर अक्षर ऊंकति विशेस॥

कपट रूप करि किते भांति कहु भेष बनावै।
गोपी गोप गुपाल की नित ख्याल पिटावै॥
रूप सिरोमणि राधिकां रसिक शिरोमनि स्यांम।
निपट वसौं ऊंर मैं सदां करि शंकेत सधाम॥ स्याम स्यामा सहित॥

याज्ञिक जी की दोनो प्रतियो में 'निपट वसौ ऊंर' के स्थान पर "बसत उदै उर' पाठ मिलता है। मगलाचरण के छंद में शिव सनकादिक की स्तुति चित्य है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है नंददास आदि वल्लभ संप्रदाय के भक्तो की रचनाओ मे इन्हे गौण स्थान दिया गया है। 'देहु बुधिबर ऊंदै उंर' मे 'उदै' की श्लिष्टता के कारण दो प्रकार से अर्थ किया जा सकता है—(१) उदय के हृदय मे श्रेष्ठ बुद्धि दो (२) हृदय में श्रेष्ठ बुद्धि का उदय दो (करो)। अंतिम छंद के 'वसत उदै उर मै सदा' आदि के अनुरोध से कदाचित् पहला अर्थ लगाना ही समीचीन होगा। 'उदय' कृत अन्य ग्रंथो में भी 'उदै उर' का प्रयोग हुआ है। डा० याज्ञिक से प्राप्त 'रामकरुना नाटिक' तथा 'चीरचिन्तामणि' नामक 'उदय' के ग्रंथों से दो उदाहरण दिए जाते है—

सुमिरि राम छवि चंद काम पूरन सुखसागर।
पूरन कला प्रकास उदै उर होत उजागर॥
करै हेत कर जोरि कै करौं कविन परनाम।
बरनहु बल हनुमान की लछिमन को संग्राम॥ राम करुना करै।

कहति कुमरि की मांत तांत तुम पूरें जोगी।
देषि कुमरि कौ हांथ कहौ संजोग वियोगी॥
करी सगांई नंद कैं कुमरि कान्ह कौ जांनि।
ईनै उंनै रस होईगौ कहौ रेष पहिचांनि॥ सुलछन हाय के॥

'फूलमजरी' (२५) मे राधा-कृष्ण का वर्णन दोहो मे किया गया है। प्रत्येक दोहे मे किसी न किसी पुष्प का नाम होने के कारण इस का नाम 'फूलमंजरी' रक्खा गया है। नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट मे मास्टर श्रीराम, ग्राम भीखमपुर, पो० फ़तेहाबाद, जिला आगरा, के नाम से इस की एक प्रति की सूचना दी गई है। उक्त स्थान जाने पर लेखक को ज्ञात हुआ कि मास्टर श्रीराम का स्वर्गवास हो गया है अतएव यह प्रति देखी न जा सकी। सभा की रिपोर्ट मे जो उद्धरण दिया हुआ है उस के अतिम दोहे मे किसी कवि की छाप नही है। पुष्पिका मे यह निर्देश अवश्य है—"इति श्री फूल मजरी नंददास किरत संपूर्ण समापतं"। इस की दूसरी प्रति रामहरी जौहरी की एक पोथी मे पाई जाती है[1] और उस का लिपि-काल सं० १७९३ है। सभा की रिपोर्ट की प्रति की भाँति इस मे भी ३१ दोहे है किंतु मूल ग्रथ के पाठ मे अथवा आदि-अत मे किसी लेखक का नाम नही है। रामहरी जौहरी नंददास के ग्रथो से विशेष रूप से परिचित थे। नंददास की अन्य कृतियों के साथ एक ही जिल्द मे इस ग्रंथ को लिखाते हुए भी उन्हों ने इस के रचयिता के नाम का उल्लेख नही कराया है, इस से यही विदित होता है कि या तो वे इसे नददास कृत नही समझते थे अथवा उन्हे इस ग्रंथ के कर्त्ता का नाम निश्चित रूप से ज्ञात न था। एक तीसरी प्रति (जिल्द संख्या ६७५/५६) डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई है। इस प्रति में एक दोहा अधिक है और उस से यह सूचित होता है कि ग्रंथ-कर्त्ता का नाम पुरुषोत्तम है।

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ड०' प्रति का परिचय।

नंददास कृत सभी ग्रंथों में उन की छाप अवश्य पाई जाती है। प्रथम दो प्रतियों में इस 'छाप' के न होने से तथा तृतीय पोथी में निश्चयपूर्वक पुरुषोत्तम नाम मिलने से यही अनुमान होता है कि यह ग्रंथ नंददास का नहीं है। डा० याज्ञिक की प्रति के आधार पर इस के १० दोहे उद्धृत किए जाते हैं—

सीस मुकट कुंडल झलक संग सोहत व्रजवाल।
पहरें माल गुलाव की आवत है नंदलाल ॥१॥
चंपक वरन सरीर सुष नैन चपल द्रग मीन।
जव दुलहनि तव रूप लषि लाल भये आधीन ॥२॥
फूलि रही जहा विविधि रति वहौत सघन वन वेलि।
कुंज पहौप उर माल धरि करत कुंज मध केलि ॥३॥
सेत वरन सोभा अधिक मानौ मधु की धूप।
लसत राधि(का) कुवरि पैं कर केवरौ अनूप ॥४॥
× × ×
नंद नंद वसुदेव कुवर मेरे जीवन मूल।
वेर वेर तो सौं कहौं आव निवारी फूल ॥१६॥
किस्तूरी सौंधो अगर हैं चंदन ता पास।
ताकौ अग्र जु रतन कहैं पाडल की वास ॥१७॥
× × ×
तुम जर हाई जाय सही महा दुषत है वाय।
और ख्याल सव छाडि कै इह करनौ हित लाय ॥२९॥
कहत फिरत सव सषीन मैं सौतिन लोचन सूल।
आज लाल हम है दयी सूरजमुषी कौ फूल ॥३०॥
पीतांवर की छवि वनी सोहत स्याम सरीर।
कुसम केतकी मुकट धरि आवत है वलवीर ॥३१॥
पहौपवंध धरि ग्रंथ है कह्यौ पहौपन कौ नाम।
परसोतम याकौ भजै लै लै पहौपन नाम ॥३२॥

'रानी मंगौ' (२६) नाम की एक पोथी का परिचय नागरी प्रचारिणी सभा की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२९-३१ में नददास के नाम से हुआ है। यह पोथी ग्राम शटीटी[1], डाकखाना होलीपुरा, जिला आगरा के निवासी ठा० प्रतापसिह के पास है। जिस जिल्द मे यह प्रति है उस मे इस के पहले जयदेव कृत 'गीतगोविद' तथा पीछे गंगग्वाल कृत 'दानलीला' लिखी हुई है। 'रानी मगौ' ग्रथ पत्र २९ से प्रारंभ होता है। इस के वाद पत्रो मे संख्याएँ नही पडी है तथा उन मे से कुछ जिल्द से अलग भी हो गए है। अन्य वस्तो मे खोजने पर लेखक को इस प्रकार के कई पत्रे प्राप्त हुए। संदर्भ तथा तुकात की सहायता से पत्रो का क्रम निश्चित कर लेने पर यह आश्चर्यजनक वात मालूम हुई कि न तो ग्रंथ के मूल पाठ मे और न 'अथ-इति' के साथ ही किसी रचयिता का नाम दिया हुआ है। सभा की रिपोर्ट मे 'रानी मंगौ' का अंतिम उद्धरण इस प्रकार है—

"× × × अरी वृषभान गोप को कहा डर मानौ। दानी दान ल्यौ सब जांनु। अहो बहौत भांति के दान कहावै। तुम कौन भांति के दानी आये एक गहन वेद वा ले यो। जल मे पीसि लोक सब देई। एक अमावस संकई मंगै अगरसिरी अपने पद रज इनकी प्यारी। रानी मंगौ। नंददास।"

इस ग्रथ की अंतिम ४ पंक्तियाँ तथा पुष्पिका इस प्रकार है—

ये नारी निरमल जग पांवन जो इन कौ जस गांनै।
इनहि आसिवे रहसि उपासीक बात महल की जांनै॥
देव असुर रिषि बधु नाग नर बधू जोड़ी जोड़ी हरि कौ प्यारी[2]।
रांनी मंगे अगरसिरी अपनै पद रज इन की धारी॥

इति श्री रांनी मगौ संपुरन समापता॥ अथ दानलीला......॥

---

[1] प्रसिद्ध नाम 'पछाँहगाम'।

[2] इस शब्द के स्थान का कागज फटा है। जो कुछ अवशिष्ट है उस से यही अनुमान होता है कि यहाँ पर 'प्यारी' पाठ रहा होगा।

दोनों उद्धरणों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि रिपोर्टर महोदय ने पुष्पिका का संक्षिप्त रूप 'रानी मंगौ' दे कर 'नंददास' शब्द बढ़ा दिया है जो कि स्पष्ट ही निराधार है। पुष्पिका के पहले का पद्यांश भी भिन्न है, केवल हलके टाइप में दी हुई पंक्ति दोनों मे समान है। बात यह है कि 'मंगै' से ले कर 'अथ दान लीला. . .' आदि शब्द पोथी के दाहिने पत्र पर लिखे हुए है। यह पत्र जिल्द में जुड़ा है। 'रानी मंगौ' के बाद मे लिखी हुई गंगग्वाल कृत 'दानलीला' का एक पत्र संयोगवश उक्त पत्र के पहले आ गया था। छंद तथा विषय आदि की दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह पत्र उस स्थान का नहीं है। रिपोर्टर महाशय का ध्यान इस ओर नहीं गया। इसी से उन का अंतिम उद्धरण 'दानलीला' का हो गया है यद्यपि 'मंगै' से ले कर 'धारी' तक का वाक्यांश 'रानी मंगौ' का ही है। 'धारी' शब्द के स्थान पर रिपोर्ट मे 'प्यारी' शब्द दिया गया है। 'दानलीला' की समाप्ति इस प्रकार होती है—

पोरि सांकरी राधा रांनी। दान चुकावत सोहन दांनी॥
ता दिन के मिस भेटा भई। प्रगटी प्रीति परस्पर नई॥
जो यह लीला सुनै सुनावै। नंद कुंवर ताहि निकट घिलावै॥
गंगग्वाल अपनी कर लीनौं। अपनी झूठौ सांपन दीनौं॥
बेर बेर कह्यौ समुझाय। गंगग्वाल मेरौ जसु गाय॥

सभा की रिपोर्ट के उद्धरण मे भी इस काव्यांश के समान 'चौपई' अथवा 'चौपाई' छन्द प्रयुक्त है परंतु प्रति के अशुद्ध होने के कारण उस में अंतिम पंक्तियों के तुक मे गड़बड़ी हो गई है।

'रानी मंगौ' लगभग ९० पंक्तियो का एक बड़ा पद है। इस का रचयिता कोई बहुत ही उदार हृदय राधावल्लभी जान पड़ता है क्योंकि राधावल्लभी तो राधा की ही उपासना तक सीमित रहते हैं, पर यह व्यक्ति लक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्माणी, सची, कौशिल्या, सुमित्रा तथा सीता आदि सभी देव-वधुओं से कृपा-याचना करता है। ऊपर दी हुई अंतिम पंक्तियो के

अतिरिक्त इस ग्रंथ से कुछ और अवतरण दिए जाते हैं—

मैं जुवती जाचन व्रत लीन्हौं।
जहि जहौ जौनि जांऊं तहि तहि अंक भुजा पर दीन्हौ ॥
पुरिष जाति वौहौ दांन मांन दे तिन तन नैकु न हेरौं।
वेसरि वलय महावर मंडित इन को अलप न फेरौं ॥
राज सिंघासन हैं रव हाथी त्यौं नही नर कर वोट।
अंगिया डडिया लहगा मुदरी इन कौं मेरैं कोट ॥

× × ×

बरसांनैं व्रषभांन गोप कैं कीरतिदा सुभ नारी।
जिन कै उदर मुकटमनि राधा सोयी वंदति चरन बिहारी ॥

× × ×

जगिपतनी ललितादिक गोपी सब की क्रिपा मनाऊं।
रास रसिक रिनियां ह्वै इन कौं भिछिक कहांऊं ॥

× × ×

रुकमनी आदि सकल पटरांनी इहै अनुग्रह कीजै।
जनम जनम सीता पदपंकज रति मति डिढि करि दीजै ॥

'कृष्णमंगल' (२७) नामक ग्रंथ का उल्लेख सभा की सन् १९३५-३७ की अप्रकाशित रिपोर्ट में इटावा के ब्रह्म प्रेस के अध्यक्ष पं० वेदनिधि शास्त्री के नाम से हुआ है। यह वास्तव मे 'ग्रंथ' न हो कर २० पंक्तियों का एक पद मात्र है जिस का नंददास कृत होना अनिश्चित है। सभा की रिपोर्ट के अनुसार यह पद इस प्रकार है—

जनमें श्री कृष्ण मुरारि भक्ति हित कारने।
मथुरा लियो अवतार गोकुल झूलै पालने ॥
तिथि अष्टमी वुधवार भादौं बदि की करी।
रोहिणी नक्षत्र आधी रात जनम लियो शुभ घरी ॥

धनि देवकी वसुदेव जहाँ प्रभु अवतरे।
धन्य यशोदा बाबा नन्द महा घर पग धरे॥
धन्य धन्य सुर नर मुनि सब जय जय करें।
दुंदुभि बजत प्रकाश सुमन वर्षा करें॥
व्रजवासी गोरस भरि कावरि ल्यावहीं।
दधिकाँदो बाबा नंद सु कीच मचावहीं॥
बाजत ताल मृदंग बीन अरु बाँसुरी।
निरतत गोपी ग्वाल चरणचित चावरी॥
यशुमति चीर पहिराय नौरंग भई ग्वालिनी।
सुन्दर वदन निहारि चकृत भई भामिनी॥
श्री बलभद्र जी के वीर असुर दल खंडना।
भक्तवत्सल महाराज यादव कुल मंडना॥
शंकर धारत हैं ध्यान सु गोद खिलावही।
सो मुख चूमति माइ सु पलना झुलावहीं॥
श्री नन्ददास सनेह चरण चित ल्यावहीं।
हरि गुण मंगल गाय गोविंद गुण गावहीं॥

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि नंददास कृत प्रसिद्ध ३० ग्रंथों में दो[1] 'मानमंजरी नाममाला' के ही भिन्न नाम हैं, सात[2] अप्राप्य है, दो[3] का कवि कृत होना संदिग्ध है, एक[4] प्रधानतया कवि कृत 'दशम स्कंध'

---

[1] 'नाममंजरी' 'विज्ञानार्थप्रकाशिका'
'नामचिंतामणिमाला' 'बाँसुरी लीला'
[2] 'प्रबोधचंद्रोदय नाटक' 'अर्थचंद्रोदय'
'रासमंजरी' [3] 'सुदामा चरित'
'मानलीला' 'नासिकेत पुराण'
'ज्ञानमंजरी' [4] 'गोवर्द्धन लीला'

के अध्याय २४ व २५ से लिया गया है अतएव वह कवि की स्वतंत्र कृति नही है, तीन[1] किसी अथवा किन्ही अन्य अप्रसिद्ध नंददास की कृतियाँ है, एक[2] उदयनाथ 'कवीद्र' की रचना है, दो[3] के रचयिता अज्ञात है तथा एक[4] कोई ग्रंथ न हो कर एक पद मात्र है। इन उन्नीस ग्रथो को उपर्युक्त सूची से निकाल देने पर ग्यारह ग्रंथ ऐसे रह जाते है जिन्हे हम कवि की प्रामाणिक कृतियाँ मान सकते हैं—रूपमजरी, विरहमंजरी, रसमंजरी, मानमजरी नाममाला, अनेकार्थमंजरी, स्यामसगाई, भँवरगीत, रुक्मिनी मंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धात पंचाध्यायी तथा दशम स्कंध। इन ग्रंथों के अतिरिक्त मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियो से नंददास की छाप वाले २८३ पद भी संगृहीत किए गए है। संपादन सबंधी कठिनाइयों के कारण इन मे से केवल ३५ पद ही कवि की ११ कृतियो के साथ 'पदावली' शीर्षक के अंतर्गत मूल पाठ मे रक्खे गए है। शेष पद परिशिष्ट १ (ग) मे संकलित है।

संपादित ग्रंथों का आधार

प्रस्तुत संस्करण मे उपर्युक्त प्रामाणिक ग्रथो को संपादित कर के प्रकाशित किया जा रहा है। नीचे संपादन सामग्री का विवेचन किया गया है।

रूपमंजरी

इस ग्रंथ की पाँच प्रतियो का उपयोग हुआ है :—

१ क—यह मुद्रित प्रति ठाकुरदास सूरदास तथा तुलसीदास नरोत्तम-

---

[1] 'दानलीला'
'हितोपदेश'
'रासलीला'

[2] 'जोगलीला'

[3] 'फूलमंजरी'
'रानी मंगौ'

[4] 'कृष्णमंगल'

दास द्वारा शुद्ध कर के 'पांचे मंजुरीओ' ग्रंथ मे सं० १९८५ मे प्रकाशित हुई थी जिस की एक प्रति स्थानीय 'भारती भवन' पुस्तकालय मे सुरक्षित है और जिस की पुस्तकालय संख्या 'उपदेश १३९' है। इस ग्रंथ मे मंजरियो का क्रम इस प्रकार है—'विरहमंजरी', 'रसमंजरी', 'मानमंजरी', 'अनेकार्थ मंजरी' तथा 'रूपमंजरी'। इस क्रम तथा पाठ के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इस संस्करण के पाठ प्रायः अशुद्ध है और इन में गुजरातीपन प्रचुर मात्रा मे है। हस्तलिखित प्रतियों द्वारा पुष्ट होने पर ही इस के पाठो को मूल पाठ मे स्थान दिया गया है।

२ ख—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के कार्यालय मे नंददास कृत दस ग्रंथ मथुरा के पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी की हस्तलिपि मे लिखे हुए सुरक्षित है। इन ग्रंथो के नाम इस प्रकार है—रासपंचाध्यायी, स्याम-सगाई, भँवरगीत, रुक्मिनीमंगल, सुदामा चरित तथा पंच-मंजरियाँ। ये ग्रंथ हस्तलिखित प्रतियो की प्रतिलिपि मात्र नही है वरन् चतुर्वेदी जी द्वारा संपादित रूप में है। मूल पाठ के नीचे कही कही पाठांतर भी दिए है किंतु जिन प्रतियों के आधार पर इन का संपादन हुआ है उन का कोई उल्लेख इस संग्रह में नही है।

इस संग्रह की अन्य चार मंजरियो के समान 'रूपमंजरी' की इस प्रति का पाठ भी 'क' में दी हुई मंजरी की अपेक्षा अधिक शुद्ध है। प्राप्त हस्तलिखित पोथियों से प्रायः मेल न खाने के कारण तथा संपादन की मूलाधार प्रतियो के संबंध में पूर्ण अनभिज्ञता होने के कारण इस के पाठों को मूल पाठ के रूप में नही ग्रहण किया जा सका है। पाठांतरों में इन का उल्लेख अवश्य कर दिया गया है।

३ ग—भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित। इस की पुस्तकालय संख्या '२० क' है। यह ज्येष्ठ वदी ९, भृगुवार, सं० १८२० की लिखी हुई है यद्यपि देखने मे आधुनिक प्रतीत होती है। इस पोथी का पाठ प्रायः अशुद्ध है।

४ घ—भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित। पुस्तक संख्या '१५ क' है। इस जिल्द में नंददास कृत 'रस', 'रूप', तथा 'विरह' मंजरियों के साथ सेनापति कृत 'कवित्तरत्नाकर' की पहली 'तरंग' दी हुई है जिस की पुष्पिका से विदित होता है कि यह पोथी सं० १८३२ में किसी ठाकुरदास मिश्र द्वारा लिखी गई थी।

'रसमंजरी' की प्रति के प्रारंभ के २५ पृष्ठ खंडित है और अवशिष्ट अंश तथा अन्य दोनो मंजरियाँ विशेष रूप से अशुद्ध है। अतएव कुछ चुने हुए स्थलो की परीक्षा के बाद इन्हे छोड़ दिया गया है।

५ ङ—गत वर्ष इस प्रति की तथा इस के साथ एक ही जिल्द में पाए जाने वाले नंददास के अन्य ग्रंथों की सूचना काशी के बाबू ब्रजरत्नदास जी ने "नंददास-कृत अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला" शीर्षक लेख मे प्रकाशित की थी[1]। नंददास संबंधी पोथियो मे इस जिल्द का एक विशिष्ट स्थान है। इस पुस्तकाकार जिल्द की पत्र-संख्या २४८ है। इस मे १६ ग्रंथ है—रासपंचाध्यायी, फूलमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, अनेकार्थमंजरी, कृष्णसिद्धांतपंचाध्यायी, मनोरथबल्लरी, नंदलीला, श्रीराधाजू की जन्म लीला, मोतीलीला, दानलीला, विदग्धमाधव, श्री गीतगोविंद सटीक भाषा तथा रुक्मिनीमंगल। इन मे से 'नंदलीला', 'श्री राधाजू की जन्म लीला' तथा 'मोतीलीला' गंगग्वाल कृत, 'दानलीला' खरगसेन कृत तथा 'विदग्धमाधव' रूपसनातन कृत है। 'फूलमंजरी' और 'मनोरथबल्लरी' मे रचयिता का नाम नही दिया है। अवशिष्ट आठ ग्रंथ नंददास के है। इस जिल्द मे चार स्थानो पर तिथियाँ दी है—'फूलमंजरी' के अंत मे सं० १७९३, आसोज बदी ११, 'मानमंजरी' के अंत में सं० १८३५ फाल्गुन सुदी १५, 'नंदलीला' के अंत मे सं० १८२९, आषाढ़ बदी ५ तथा 'विदग्धमाधव' के अंत मे सं० १८२४, आसोज बदी ७ रविवार लिखा

---

[1] हिंदुस्तानी (अप्रैल-जून), सन् १९४१

हुआ है। इस मे 'जुगन' तथा 'महात्मा हरिचंद सवाई' नामक दो लिपि-कारो का उल्लेख है किन्तु हस्तलेखों से यह स्पष्ट है कि किसी तीसरे व्यक्ति ने भी उस के कुछ अंशों को लिखा था। 'विदग्धमाधव' तथा 'रुक्मिनीमंगल' की पुष्पिकाओं से यह भी ज्ञात होता है कि यह जिल्द जयपुर निवासी हरीराम जौहरी नामक किन्ही सज्जन की थी तथा अंतिम ग्रंथ लिखे जाने के समय वे वृंदावन मे थे।

उस जिल्द की 'रूपमजरी' की प्रति से मूल पाठ निर्धारित करने मे विशेष सहायता ली गई है। पाठो की शुद्धता के अतिरिक्त इस के कुछ पाठ ऐसे है जो अन्य पोथियों में नही पाए गए।

इन पोथियों के अतिरिक्त अजयगढ रियासत के किन्ही पं० भगवान-दीन के नाम से एक प्रति का उल्लेख पाया जाता है[१]। उक्त सज्जन से पत्र-व्यवहार करने पर कोई उत्तर न मिला। पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी मे एक अन्य प्रति का पता चला था[२]। वहाँ के अधिकारियों ने इस प्रति को भेजा भी किंतु खेद है कि यह उस समय प्राप्त हुई जव 'रूपमंजरी' छप चुकी थी। इस प्रति की जिल्द के साथ ही 'विरहमंजरी' की भी एक प्रति है।

विरहमंजरी

इस ग्रंथ के संपादन में छः प्रतियों का उपयोग हुआ है:—

१ क—ठाकुरदास सूरदास द्वारा 'पांचे मंजुरीओ' मे प्रकाशित प्रति[१]।

२ ख—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित तथा नागरी प्रचा-

---

[१] खो० रि० सन् १९०६-०८, सं० ३०१ (ए)

[२] खो० रि० (पंजाव), सन् १९२२-२४, सं० ७२ (सी)

[१] दे० 'रूपमंजरी' की 'क' प्रति का परिचय

४ घ—'रसमंजरी' मे कुछ स्थल ऐसे है जो 'रूप' तथा 'विरह' मंजरियो मे भी साधारण पाठ-भेद के साथ मिलते है। इस प्रति[1] ने इन स्थलों को प्रायः छोड दिया है।

५ ङ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कॉकरौली, से प्राप्त। बंध-सख्या ७५ तथा पुस्तक-संख्या १४। इस मे केवल दो पत्र है। 'रसमजरी' के जिस थोड़े से अंश का पाठ इन पत्रो मे मिलता है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रति अपने मूल रूप मे अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती।

एक अन्य प्रति का उल्लेख काशी के स्व० छुन्नीलाल वैद्य के नाम से सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९०९-१२, सं० २०८ (ई) मे पाया जाता है। वैद्य जी के संगह की समस्त पुस्तकों को देखने पर भी इस प्रति का कोई पता न चल सका।

मानमंजरी नाममाला

इस ग्रंथ की छः प्रतियो की परीक्षा की गई है:—

१ अ—'नंददास कृत अनेकार्थमजरी तथा नाममाला' शीर्षक प्रयाग विश्वविद्यालय की 'यूनिवर्सिटी स्टडीज' सन् १९३९ मे प्रकाशित तथा श्री बलभद्रप्रसाद मिश्र, एम० ए० और श्री विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा, एम० ए०, द्वारा सपादित।

'नाममाला' की इस प्रति के अंतिम दोहे की संख्या २९९ है। छापे की भूल के कारण 'धर्मराज नाम' शीर्षक दोहे मे दोहा-सख्या देने से रह गई है। इस भूल को सुधारने से मूल पाठ मे ३०० दोहे हो जाते हैं। परिशिष्ट मे १६ दोहे और पाए जाते हैं जो या तो "केवल किसी एक ही प्रति मे मिल सके हैं" अथवा "बिलकुल अस्पष्ट एव अशुद्ध है।" इस संस्करण के दोहे वर्णानुक्रम के अनुसार रक्खे गए है।

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

२ अ—यह प्रति सं० १८१८ से कुछ पहले की लिखी हुई मानी जा सकती है[1]। इस के अंतिम दोहे की संख्या २६६ है। इस में 'मुक्ता' तथा 'हाक' शीर्षक दोहों की संख्या ४० तथा २३० दी है जो अशुद्ध है और क्रम से ३९ तथा २२९ होनी चाहिए। साथ ही 'दिसा' (दो० सं० १८४), 'नमह' (दो० सं० १९५) तथा 'कंतकी' (दो० सं० २५१) नामक तीन दोहे क्रमशः दोहा संख्या २१५, २०२ तथा २५८ पर दोहरा दिए गए हैं। इन भूलों को सुधारने से इस प्रति में २६१ दोहे रह जाते हैं। इस का पाठ साधारणतया शुद्ध है और अन्य प्राचीन पोथियों से साम्य रखता है।

३ इ—जि० सं० ७६६/१४। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इस जिल्द के प्रथम पत्र की संख्या ३५ है जिस से यही अनुमान किया जा सकता है कि इस प्रति के पहले कोई अन्य ग्रंथ लिखा रहा होगा। ऐसा जान पड़ता है कि इस जिल्द के प्रारंभ तथा अंत की दाहिनी और बाई ओर के कुछ पत्रे समान रूप से निकाल लिए गए हैं। पत्र ३५ से ७१ तक 'नाममाला' दी हुई है और तत्पश्चात् 'अनेकार्थध्वनिमंजरी' नामक संस्कृत का ग्रंथ दिया है जिस की पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्रीकाश्मीराम्नाये महा क्षपणक कवि विरचिते अनेकार्थध्वनिमजर्या पदाधिकारः समाप्तः ॥ शुभमस्तु ॥ संवत् १७२५ वर्षे पौष वदि १० शुक्रे लिषतं लाभपुरे शुभमस्तु ॥"

यह प्रति आधुनिक पुस्तकाकार रूप मे लिखी है। काग़ज़, स्याही तथा लिखावट के आधार पर इसे लगभग पौने तीन सौ वर्ष प्राचीन मानना आश्चर्य का विषय होगा।

इस प्रति में 'शर' तथा 'बंबूक' नाम के दो दोहे क्रमशः दोहा-संख्या ७१-१६४, २२१-२६७ पर समान रूप से मिलते हैं। इस प्रकार इस के अंतिम दोहे की संख्या २८५ न हो कर २८३ होनी चाहिए। इस प्रति का

---

[1] दे० 'बिरहमंजरी' की 'ग' प्रति का परिचय

पाठ प्रायः अशुद्ध है। बिना अन्य पोथियों का सहारा लिए इस के अनेक दोहो का अर्थ स्पष्ट नही होता। तथापि यह मानना पड़ेगा कि 'मानमंजरी' की समस्त ज्ञात प्रतियो में यह प्राचीनतम है।

४ उ—जि० सं० १७५/१४। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। यह पोथी क्वार वदी ५, बुधवार, सं० १८७६ मे किन्ही वैष्णव सीताराम के लिए लिखी गई थी। दोहा-सख्या की अशुद्धियो को सुधारने से यह पता चलता है कि अंतिम दोहे की संख्या २६८ न हो कर २६२ होनी चाहिए। पाठातरों की दृष्टि से यह प्रति 'आ' से विशेष साम्य रखती है।

५ ऊ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली, से प्राप्त। यह पोथी सं० १९१९ मे किसी मोहनलाल द्वारा लिखी गई थी। आधुनिक होते हुए भी इस के अधिकाश दोहे प्राचीन प्रतियों से मेल खाते है।

६ ए—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस प्रति[1] के अंत मे इस का लिपि-काल फाल्गुन सुदी १५, सं० १८३५ दिया हुआ है और यह किसी 'जुगल' नामक व्यक्ति द्वारा लिखी गई थी। इस प्रति मे ३२५ दोहे हैं। दोहा ३२० तथा ३२१ में एक अत्यत महत्त्वपूर्ण सूचना दी गई है—

दो सत पैंसठ ऊपरें, दोहा श्रीनंददास।
राम्हरी बाकी किये, कोष धनंजय तास॥
संतन की जानी बड़ी, रामहरी मतिमंद।
अपने समझन कों लिखे, वन ते बिच दिए संद॥

जैसा कि हम ऊपर देख चुके है जिस जिल्द मे यह प्रति पाई जाती है वह जयपुर निवासी रामहरी अथवा हरीराम जौहरी के निज की थी। रामहरी जी न 'मानमंजरी' की अपनी इस प्रति मे स्वरचित ६० दोहों को पृथक् रूप से न रख कर उन्हे यथास्थान नंददास के दोहों के साथ मिला कर लिखवाया है और इस बात का कोई निर्देश नही किया कि उन के बनाए

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

हुए दोहे कौन हैं। इस स्थिति में मूल तथा प्रक्षिप्त दोहों को अलग करने के लिए यह आवश्यक है कि इन के दोहों का मिलान प्राचीनतर प्रतियों से किया जाय। इस संबंध में हमारे सामने यह कठिनाई उपस्थित होती है कि प्रक्षिप्त दोहों के रचना-काल का हमें कोई ज्ञान नहीं। प्रति के अंत में दिया हुआ संवत् इस प्रति की प्रतिलिपि का है। उस से प्रक्षिप्त अंशों के रचना-काल पर प्रकाश नहीं पड़ता है।

नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९२९-३१ की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट से रामहरी द्वारा रचित छः ग्रंथों की सूचना प्राप्त हुई—१. बोध बावनी, २. बोध विलास, ३. लघुनामावली, ४. लघुशब्दावली, ५. रस-पचीसी तथा ६. सतहंसी। इन में से ३ व ४ को छोड़ कर अन्य सभी ग्रंथ मौलिक रचनाएँ न हो कर अन्य कवियों की कृतियों के संग्रह मात्र हैं तथा उन की सहायता से प्रस्तुत विषय के संबंध में केवल इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि नंददास की कृतियों से रामहरी विशेष रूप से परिचित थे जैसा कि 'रसपचीसी' के इस अंतिम दोहे से विदित होता है—

वृंदावन जमुना पुलिन, राधाकृष्ण विहार।
नंददास सत कविन की, बानी करै अहार॥

'लघुनामावली' तथा 'लघुशब्दावली' में 'मानमंजरी' तथा 'अनेकार्थ-मंजरी' की भाँति पर्यायवाची तथा अनेकार्थी शब्दों पर दोहे मिलते हैं। 'लघुनामावली' के मंगलाचरण में रामहरी ने नंददास की 'नाममाला' का स्मरण भी किया है—

नंददास नामावली अमरकोश के नाम।
इन तें जे विसतरत औ लिषे हेत घनस्याम॥

इस ग्रंथ का रचना-काल इस प्रकार दिया है—

अब्द षंट जुग चारि तिस श्रावण शुक्ला तीज।
रामहरी रुजबान करि सदा कृष्ण रंग भीज॥

'चारि तिस' से ३४ का अर्थ लगाया जा सकता है। 'अब्द' का 'वर्ष', 'षंड' का '६', 'जुग' का '२' अर्थ करने से १८ की संख्या प्राप्त होती है और फलतः ग्रंथ का रचना-काल स० १८३४ ठहरता है। 'लघुशब्दावली' में दिए हुए रचना-काल से इस कथन की पुष्टि भी होती है—

वेद राम वसु कलानिधि, संवत मास जु क्वार।
शुक्ल पक्ष पून्यौं सरद, वृंदावन गुरुवार॥

इस मे वेद '४', राम '३', वसु '८' तथा कलानिधि '१' के अको को वामगति से पढ़ने से १८३४ निकल आता है। वृंदावन में कालीदह पर निवास करने वाले बाबा वंसीदास की कुटी पर जाने पर लेखक को यह पता चला कि ऊपर दिए हुए छः ग्रथ कुछ अन्य कवियों की रचनाओं के साथ जिस जिल्द मे मिलते है उस की 'लघुशब्दावली' की प्रति के अंत मे यह गद्याश भी दिया हुआ है—"फागुन सुदी १५ सवत् १८३५ **हरीरांम जोंहरी नें लिषी** अति प्रीति सों।" सभा के रिपोर्टर ने न जाने क्यों इस आवश्यक उद्धरण को अपनी रिपोर्ट मे स्थान नही दिया। यह तिथि वही है जो 'मानमंजरी' की 'ए' प्रति के अंत मे दी हुई है और इस से इस बात का पता चलता है कि 'लघुनामावली' तथा 'लघुशब्दावली' जिन की रचना रामहरी ने सं० १८३४ में की थी उन्ही की प्रतिलिपि उन्हो ने स्वयं फाल्गुन सुदी १५, १८३५ में की और इसी समय उन्हो ने 'मानमंजरी' की 'ए' प्रति में नंददास कृत दोहों के साथ अपने दोहो को मिलवाया था।

'लघुनामावली' तथा 'मानमंजरी' की इस प्रति के समान दोहों के संबंध मे आगे विचार किया जायगा।

प्रस्तुत संस्करण के परिशिष्ट ३ मे 'मानमंजरी' मे 'क' से ले कर 'छ' तक के सात नामों द्वारा सूचित पाठांतर पाए जाते है। ये नाम 'मानमंजरी' की उन हस्तलिखित प्रतियों के है जिन का उपयोग 'अ' के संपादन में किया गया था और जो 'अ' के मूल पाठ के नीचे दिए हुए पाठांतरों से लिए गए है। इन मे से 'ख' का लिपि-काल सं० १९०५, 'घ' का सं० १९०६, 'ङ'

का सं० १८७५, 'च' का सं० १६६६ है[1]। 'क' के विषय मे कुछ ज्ञात नहीं है। 'ग' तथा 'छ' प्रतियों को डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'अ' के संपादन के लिए जोधपुर के राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित दो हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि करवा कर मँगवाया था। लेखक को उन्ही से ये दोनों प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई है। 'ग' में 'मानमंजरी' का वह रूप मिलता है जो उसे शुद्ध कर के किसी गगादास नामक व्यक्ति ने दिया था। गगादास ने सं० १८८० में 'मानमंजरी' के दोहों को दस वर्गों मे बाँटा था—'देवता वर्ग' 'नमस्कारादि वर्ग', 'राजा और मनुष्य वर्ग', 'धातु और शृंगार वर्ग', 'पक्षी वर्ग', 'जल वर्ग', 'पर्वत और पशु वर्ग', 'पृथ्वी वर्ग', 'वन वर्ग', तथा 'अति आदि फुटकर वर्ग'। इस प्रति मे कवि कृत दोहों मे परिवर्तन करने के अतिरिक्त बीच बीच में चौपाइयाँ भी जोड दी गई है। इस की छंद-संख्या ४०० है। 'छ' प्रतिलिपि आधुनिक होते हुए भी प्राचीन शैली मे बडे ही सुंदर अक्षरो में लिखी गई है। इस से मूल प्रति की तिथि आदि का कोई परिचय नहीं मिलता। इस मे 'मानमंजरी' मे २९९ तथा 'अनेकार्थ-मंजरी में ११८ दोहे है।

'मानमंजरी' की चार मुद्रित प्रतियो की भी परीक्षा की गई है। लीथो की छपी एक प्रति काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय मे सुरक्षित है। मुखपृष्ठ न होने के कारण इस के मुद्रक तथा प्रकाशक का नाम नही ज्ञात होता है। इस प्रति की 'नाममाला' मे २६७ तथा 'अनेकार्थ' में १५२ अंतिम दोहा-संख्या है। स्थानीय 'भारती भवन' मे 'अनेकार्थ और नाममाला' नाम से दो मुद्रित प्रतियाँ मिलती है जिन की पुस्तकालय संख्या 'उपदेश ३' है। इन में से एक काशी के हरिप्रकाश यंत्रालय मे अमीरसिंह द्वारा मुद्रित हुई थी। इन में 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' के अंतिम दोहों की संख्या क्रमशः २७८

---

[1] 'एलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज', १९३९ ई०, 'अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला', भूमिका, पृ० (ज)

व १५४ है। इस प्रति में मुद्रण-संवत् नही है। हरिप्रकाश यंत्रालय से मुद्रित एक दूसरा संस्करण आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी, में सुरक्षित है। उस मे मुद्रण-संवत् १९३३ दिया हे। तीसरी प्रति सं० १९२२ में काशी के लाइट प्रेस द्वारा मुद्रित हुई। इस मे 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' की अंतिम दोहा-सख्या २६७ तथा १५५ है। अंतिम प्रति 'पांचे मंजुरीओ' मे प्राप्त होती है और उस मे 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' मे ३०१ तथा ११६ दोहे है।

इन प्रतियो की अंतिम दोहा-संख्या प्रायः शुद्ध नही है। विस्तार-भय से इन की अशुद्धियों का उल्लेख नही किया गया है। उपर्युक्त प्रतियों के अतिरिक्त सभा की खोज रिपोर्टो में इस ग्रंथ की कुछ अन्य प्रतियों के विवरण दिए है जिन मे से यहाँ तीन प्राचीनतम प्रतियों का ही उल्लेख किया जाता है। प्रकाशित रिपोर्टो मे खो० रि० सन् १९१७-१९, संख्या ११९ (ए) पर सं० १७८२ की लिखी एक प्रति की सूचना दी गई है जिस की दोहा-संख्या २६१ है। सन् १९२३-२५ तथा १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्टो मे क्रमशः सं० १८१२ तथा १८१४ की दो प्रतियों के उल्लेख है। पहली प्रति के विवरण मे अन्वेषक ने प्रति मे पाए जाने वाले विभिन्न नामों की एक सूची दी है जिस के प्रथम १२ नाम 'अनेकार्थ' के हैं, अवशिष्ट 'मानमंजरी' के है। कदाचित् इन्ही पहले के एक दर्जन नामों को देख कर उन्हों ने 'अनेकार्थ' का शीर्षक दे कर इस प्रति का विवरण दिया है। सं० १८१४ की प्रति के अंत के उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि उस मे २७१ दोहे हैं।

'मानमंजरी' की पाठ संबंधी इस सामग्री से परिचय प्राप्त कर लेने के बाद यह प्रश्न उठता है कि उल्लिखित प्रतियों में कौन ऐसी प्रति अथवा प्रतियाँ है जो कवि की मूल कृति के निकटतम पहुँचती है। स्वभावतः ज्ञात प्राचीनतम प्रति होने के कारण हमारा ध्यान सर्वप्रथम 'इ' की ओर जाता है जो सं० १७२५ में लिखी गई थी और जिस में २८३ दोहे है। इस

के नाम नामों के दोहे विशेष कठिनाई उपस्थित करते है। इस मे 'सीघ्र' नाम पर दो दोहे मिलते हैं—

आसु तरस सहसा झटत तुरत तूर्न द्रुत होइ।
क्षर सावर तुर क्षप्र अरत छुरय रंहस सोइ[1]॥
बाज वेग जव रभस रन अवलंवत उताल।
चपल चली चातुर अली आतुर लखि नंदलाल॥

'आ' मे 'सीघ्र' पर केवल एक दोहा है—

आसु झटत द्रुत तूर्न लघु छिप्र सत्तुर उत्ताल।
तुरत चली चातुर अली, आतुर लिखि नंदलाल॥

साधारणतया 'इ' के दोनो दोहों का मूल रूप 'आ' के दोहे में लक्षित होता जान पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अधिक पर्यायवाची नामों का समावेश करने के लिए 'आ' के दोहार्द्ध मे आवश्यक परिवर्तन कर के तथा दो अन्य दोहार्द्ध गढ कर दो दोहों की रचना कर ली गई है। इन के विपरीत यह भी कल्पना की जा सकती है कि 'इ' के प्रथम दोहे के दोहार्द्ध में आवश्यक परिवर्तन कर के तथा उस के दूसरे दोहार्द्ध तथा दूसरे दोहे के प्रथमार्द्ध को छोड़ कर 'आ' के दोहे की रचना कर ली गई होगी। किंतु इस प्रकार की कल्पना नितांत असाधारण होगी। प्राचीन साहित्य मे दूसरे की रचना को परिवर्द्धित करने के अनेक उदाहरण मिलते है, उसे काट-छाँट कर छोटा करने के उदाहरण यदि उपलब्ध भी हो सके तो वे अपवाद स्वरूप ही माने जाएँगे। 'घर' नाम पर दोनो प्रतियो के दोहों का एक अन्य उदाहरण भी ध्यान देने योग्य है—

---

[1] यह अस्पष्ट पंक्ति 'अ' में इस प्रकार है—
छिप्र सु सत्वर तुच्छ लघु रात्रा रंभा सोइ

इ— सदन सकेत निकेत ग्रह गेह वेस्म संकेत ।
　　लगन धिज्न पद[1] आसपद आलय निलय निकेत ।।
　　मंदिर मंडप आयतन वसत निकाय स्थान ।
　　भवन भूप व्रषभांन के गई सहचरी जान ।।
आ— सदन सकेत निकेत ग्रह आलय निलय यस्थान ।
　　भवन भूप व्रषभांन कें गई सहचरी जान ।।

'आ' के दोहे को परिवर्द्धित करने की प्रवृत्ति इस उदाहरण में कुछ अधिक स्पष्टता से परिलक्षित होती है । इसी प्रकार 'कंचन' तथा 'समूह' नामो के दोहों के उदाहरण भी विचारणीय है । प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों मे केवल 'ऊ' ने जो सं० १८७६ की है इन नामों में से दो में 'इ' से मिलता जुलता पाठ दिया है । 'घर' तथा 'समूह' नाम पर उस ने भी 'आ', 'ऊ' और 'ए' के समान एक ही दोहा दिया है ।

अन्य पोथियो से तुलना करने पर 'इ' मे दूसरे प्रकार की असमानताएँ भी मिलती है । 'रोमराजी', 'अरुन', 'कुद' 'लघुभ्राता' और 'मनोहर' के नामों पर इस मे एक एक दोहा मिलता है। दूसरी पोथियो में ये नाम ही नही है । साथ ही 'ग्रीव' 'भृकुटी', 'अंधकार', 'अर्द्धरात्रि', 'राजवल्ली' तथा 'बिवाह', इन छः शीर्षको को इस ने बिलकुल छोड़ दिया है। उपलब्ध सभी पोथियो मे ये दिए गए है। इन्हें छोड़ देने से संदर्भ मे कुछ अपूर्णता भी आ गई है । इस प्रति का 'पान' शीर्षक दोहा अन्य प्रतियों से बिलकुल भिन्न है ।

इन असमानताओं के रहते हुए केवल प्राचीनतम प्रति होने के कारण इसे असंदिग्ध मान लेना युक्तिसंगत नही है जब तक इस का पक्ष समर्थन करने वाली कुछ और समसामयिक अथवा इस से भी अधिक प्राचीन प्रतियाँ न मिल जायँ ।

---

[1] अयन धिस्न पुनि (अ)

प्रस्तुत विषय का अध्ययन 'ए' प्रति के आधार पर भी किया जा सकता है। 'ए' का लिपि-काल सं० १८३५ है। इस के उन दो दोहों को ऊपर उद्धृत किया जा चुका है जिन में रामहरी इस बात का उल्लेख करते है कि 'ए' में नंददास कृत २६५ दोहे हैं। उन दो दोहों के साथ ही 'ए' के अंत में तीन दोहे और ऐसे है जिन्हे रामहरी कृत मान लेने में कठिनाई नही हो सकती है। वे ग्रंथ-माहात्म्य के रूप में जोड़े गए है—

मांन बिना नहि नेह कछु नेह बिना नहि मान।
लोंन संग लागैं रुचिर जे हैं रस मिष्टान ॥
जैती नेह तित मान वन नितहि मेह बिन भांन।
रसना रस छुवत कठिन मान सरकरा जान ॥
बिन जाने घनस्याम के आवागमन न जाइ।
तातें हरि गुरु वैष्नव भज निसि दिन चित लाइ ॥

'ए' के ३२५ दोहो से इन पाँच दोहो को पृथक् करने पर मिलवाँ दोहों की संख्या ३२० रह जाती है। 'लघुनामावली' मे १०२ दोहे है और वे रामहरी के निज के है। नंददास के दोहो से वे पृथक् हैं—

शिर धरि श्रीराधारमन पद भट्ट गोपाल सहाइ।
कोश धनंजय आदि औ कछुक नाम कहाइ ॥
नंददास नामावली अमरकोश के नाम।
इन तें जे वितरक्त औ लिपे हेत घनस्याम ॥

'लघुनामावली' के ४८ दोहे लगभग उसी रूप मे 'ए' में पाए जाते हैं। रामहरी के स्वरचित इन ४८ दोहों को 'ए' के उक्त ३२० दोहो से बाद देने पर 'ए' में २७२ दोहे नंददास कृत माने जाने चाहिए। यदि रामहरी की दी हुई २६५ की संख्या मे किसी प्रकार की भूल नही है तो 'ए' के अवशिष्ट दोहो में सात और दोहे रामहरी कृत समझे जाएँगे। 'लघुनामावली' तथा 'ए' के आधार पर उन सात दोहों का पता लगाना संभव नही है। 'लघुनामावली' के दोहों की परीक्षा करते समय एक आश्चर्यजनक बात

ज्ञात हुई जिस का उल्लेख कर देना आवश्यक है। 'लघुनामावली' में 'जन्म' का दोहा इस प्रकार दिया है—

भव उदगम उद्भव जनन जनि उत्पति सब ग्राम ।
जन्म सफल जग जब भलो भजि मनमोहन स्याम ॥

इसी दोहे का थोडा परिवर्तित रूप 'ए' मे भी है—

भव उद्भव उद्गम जनन जन उतपति है भाम ।
जन्म सफल तब ही जबै भजियै सुंदर स्याम ॥

लगभग इसी रूप में 'इ' ने भी यह दोहा दिया है—

भव उदभव उदगम जनन जन उतपति है भाम ।
जन्म सुफल तब ही जबहि भजीए सुंदर स्याम ॥

'जन्म' शब्द के बाद ही 'रस' नाम का यह दोहा 'लघुनामावली' में दिया है—

सारध मधुरँग पुष्परस कुसुमसार मकरंद ।
रस के जांननहार इक भजि लै रे नंदनंद ॥

यह दोहा भी साधारण पाठ-भेद के साथ 'इ' में मिलता है ।

'इ' के पाठ के प्रामाणिक होने के विषय में दो मत हो सकते है परंतु उस का लिपि-काल सं० १७२५ न मानने का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है । इस स्थिति में यही कहना पडेगा कि 'लघुनामावली' के रचना-काल के १०९ वर्ष पहले जिन दो दोहो का अस्तित्व मिलता है वे रामहरी कृत नही हो सकते । यदि 'इ' से प्राचीन अथवा उस की समसामयिक पोथियों में भी ये दोहे प्राप्त हों तभी यह कहा जा सकेगा कि नंददास कृत इन दोहों को रामहरी ने अपने निजी ग्रथ मे चला दिया होगा अन्यथा यह कल्पना करनी पड़ेगी कि किसी दूसरे की कृति से उन्हों ने इन्हे ले लिया होगा । जिस व्यक्ति ने नंददास के प्राय सभी दोहों को अपने उल्लेख द्वारा पृथक् रक्खा उस ने उन के अथवा किसी दूसरे के केवल दो दोहों के संबंध मे उस नीति का क्यो अनुसरण नही किया यह आश्चर्य का विषय अवश्य है ।

'आ' प्रति के पाठ की परीक्षा करने पर यह संतोष होता है कि उस में कोई विशेष आपत्तिजनक बात नहीं मिलती है। जैसा कहा जा चुका है 'इ' के परिवर्द्धित रूप वाले दोहे उस में नहीं हैं। 'आ' के 'ग्रीव', 'भृकुटी', 'अंधकार', 'अर्द्धरात्रि', 'राजवल्ली', तथा 'विवाह' शीर्षक जिन छः दोहों को 'इ' ने नहीं दिया वे 'उ', 'ऊ' और 'ए' मे पाए जाने के अतिरिक्त अप्रकाशित खोज रिपोर्ट १९२३-२५ में स० १८१२ की प्रति की नामों की सूची में भी पाए जाते हैं, केवल 'भृकुटी' नाम उस में नहीं है। 'आ' के २६१ दोहे, 'लघुनामावली' के दोहो को बाद देने पर, 'ए' के अवशिष्ट २७२ दोहों मे समान रूप से पाए जाते है। इस प्रकार हम देखते है कि अधिकांश प्रस्तुत सामग्री 'आ' के विरुद्ध न जा कर उस के पक्ष का समर्थन करती है।

'मानमंजरी' के पाठ के संबंध मे एक धारणा प्राय. रूढ़ि सी हो चली है और वह यह है कि इस मे कवि कृत फुटकर दोहे संगृहीत है। कवि के सामने कोई निश्चित क्रम अथवा सिद्धात न था। इसी भ्रमात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित हो कर गंगादास नामक किसी व्यक्ति ने समस्त दोहों को दस वर्गों में बाट दिया था तथा 'अ' मे सारे दोहो को अकारादि-क्रम से रख दिया गया है। 'मानमंजरी' के प्रस्तुत संस्करण के दोहों का क्रम 'आ', 'उ' आदि सभी पोथियों से साधारण अंतरो के साथ मेल खाता है। सच तो यह है कि केवल क्रम की दृष्टि से पोथियों अथवा पहले की छपी प्रतियों में कोई महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं पाए जाते। मंगलाचरण के बाद के दोहे में कवि ने उल्लेख किया है कि हमारे दोहों के अर्थ मानवती राधा पर घटित होते हैं—

गुंथनि नाना नाम को, 'अमरकोस' के भाइ।
मानवती के मान पर, मिलै अर्थ सब आइ॥

इस के बाद मान-माहात्म्य का स्मरण कर 'सखी' नाम का दोहा इस प्रकार दिया गया है—

बयसा, सैरिन्धी, सखी, हितू सहचरी आहि।
अली कुंवर नँदलाल की, चली मनावन ताहि ॥

सखी आतुर कृष्ण की दशा के कारण सरस्वती का आराधन करती हुई शीघ्रतापूर्वक वृषभान के घर पहुँचती है जिस के पास की रौप्य गोशालाओं, उज्वल अट्टालिकाओं तथा वैभव की वस्तुओं का वर्णन करते हुए कवि इस बात का उल्लेख करता है कि सिद्धांजन लगाए रहने के कारण सखी अलक्षित रूप से घर के भीतर प्रवेश करती है—

कज्जल, गज पाटल, मसी, नाग, दीपसुत सोइ।
लुकअंजन दृग दै चली, ताहि न देखै कोइ ॥

मानिनी राधा के एकातावास मे पहुँचने पर कुछ क्षणो तक सखी उस की छवि देखती है और पुनः जल द्वारा आँखों का लोकांजन धो कर प्रकट हो जाती है—

पानी नैन पखारि कै, अंजन हाँतौ कीय।
प्रगट भई पिय की सखी, निपट ससंकित हीय ॥

प्रच्छन्न रूप से पिय की सखी को अपने पास आया देख कर राधा अत्यंत क्रुद्ध हुई—

पीता, गौरी, कांचनी, रजनी, पिंडा नाम।
हरदी चूनौ परत ज्यौं, यौं तिहिं दिखि भई भाम ॥

क्रोध के कुछ शांत होने पर सखी उसे मनाने के प्रयत्न में संलग्न होती है और अंततोगत्वा अपने कार्य मे सफल हो कर राधा-कृष्ण का मिलन करा देती है—

गो, हृषीक, खं, करन, गुन, इंद्री ज्यौं असु पाइ।
यौं राधा-माधव मिले, परम प्रेम-रस पाइ ॥

कथा के इस हलके आवरण में दोहों का साधारण उलट फेर संभव माना जा सकता है किंतु 'इंद्री' शीर्षक दोहा अकारादि-क्रम के अनुसार

'सखी' नाम के पहले रक्खे जाने से संदर्भ में कैसी गड़बड़ी पैदा कर देता है यह सहज ही में देखा जा सकता है।

'मानमंजरी' के सभी दोहों में दो बातें लक्षित होती हैं। उन के कुछ अंश में पर्यायवाचियों की सूची दी गई है तथा कुछ मे उपर्युक्त कथाक्रम का निर्वाह थोड़े बहुत रूप मे किया गया है। जिन नामों की सूची लंबी थी उन में एक अथवा दो दोहे अधिक बढ़ा कर संदर्भ संबंधी सामग्री जोड़ दी गई है। ऐसा कोई नाम ग्रंथ में न मिलेगा जिस मे केवल एक प्रकार की ही सामग्री हो। इस बात को ध्यान में रख कर 'अ' के दोहों को जब हम देखते हैं तो दो नामों के संबंध मे कठिनाई उपस्थित होती है। 'हस्ती' नाम पर 'अ' मे यह दोहा है—

हस्ती दंती द्विरद धुव पद्मी वारन व्याल।
कुंजर इभु कुंभी करी तंवेरम सुंडाल॥

इस दोहे मे केवल पर्यायवाची शब्द ही है। इस के साथ संदर्भ से संबंधित एक दूसरा दोहा 'अ' ने दिया है—

सिंधुर अनगय नाग हरि गज सामज मातंग।
इत गयंद घूमत खरे रंजित नाना रंग॥

यह दोहा 'इ', 'उ' आदि सभी पोथियों में है और जैसा अभी कहा गया है जिस प्रणाली का कवि ने सभी दोहो मे अनुसरण किया है उस से मेल भी खाता है।

'पाप' नाम पर भी 'अ' मे केवल एक दोहा है—

पाप महाबन दवन दव जाको रंचक नाम।
तासों तू कपटी कहै तोहि कहा कहौं भाम॥

इस दोहे में कथा वाला भाग तो मिलता है किंतु पर्यायवाची शब्दों की सूची नहीं मिलती। दूसरी प्रतियो में इस दोहे के पहले इस प्रकार का दोहा उपलब्ध है—

एन वृजिन दुष्कृत दुरित अघ मलीन मसि पंक।
किल्विष कल्मष कलुष पुनि कस्मल समल कलंक॥

'हस्ती' तथा 'पाग' नाम के इन दो दोहों को कवि कृत मान लेना उचित जान पड़ता है। 'भय' नाम का एक तीसरा दोहा 'अ' मे न पाए जाने पर भी मूल पाठ मे सम्मिलित कर लिया गया है। संदर्भ की दृष्टि से विशेष आकर्षक होने के अतिरिक्त कुछ प्रतियों ने इसे दिया भी है।

इस प्रकार 'मानमंजरी' के मूल पाठ मे २६४ दोहे रक्खे गए है[1]। परिशिष्ट १ (क) मे 'अ' के आधार पर इस ग्रंथ के ३४ संदिग्ध दोहे संगृहीत हैं।

---

[1] प्रस्तुत संस्करण के प्रेस जाते समय 'मानमंजरी' की सं० १७५८ की एक प्रति की सूचना डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय से प्राप्त हुई। यह प्रति स्थानीय "म्युनिसिपल म्यूजियम" में सुरक्षित है। इस की साधारण परीक्षा करने से विदित हुआ कि इस में भी 'इ' प्रति के 'सीघ्र', 'घर', 'कंचन', तथा 'समूह' नाम के परिवर्द्धित रूप वाले दोहे नहीं है। 'इ' के नए शीर्षकों में 'अरुन' तथा 'लघुभ्राता' के दोहे इस प्रति में हैं। 'रस' नाम का दोहा जिसे रामहरी ने स्वरचित 'लघुनामावली' में रक्खा है वह 'इ' की भाँति इस प्रति में भी प्राप्त है यद्यपि यहाँ वह कुछ अशुद्ध रूप में है। प्रति के अंत में 'माला' शीर्षक दोहे के बाद "अथ प्रभु के नाम" लिख कर कृष्ण के विभिन्न नामों तथा उन की महत्ता का वर्णन करने वाली लगभग ३० चौपाइयाँ दी है जिन के अंत में नंददास की छाप भी पड़ी है। यह काव्यांश कवि कृत नहीं प्रतीत होता है।

स्थानीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के संग्रह में भी 'मानमंजरी' की एक प्रति प्राप्त है जो देखने में अत्यंत प्राचीन और जीर्ण है। पुष्पिका के स्थान पर प्रति खंडित है। 'इ' के संबंध में ऊपर जो आपत्तियाँ की गई है वे इस प्रति पर नहीं लागू होतीं। प्रस्तुत संस्करण से इस प्रति में कुछ दोहे अधिक अवश्य हैं।

खेद है इन दोनों प्रतियों का समुचित उपयोग इस संस्करण में नहीं किया जा सका।

'इ' प्रति ने ४, ५, तथा ६ संख्यक दोहों को छोड़ कर अवशिष्ट सभी दोहे दिए हैं। 'उ' ने दोहा १, ७, २७, २८, २९, ३०, ३१, 'ऊ' ने दोहा ४, ५, २२, २३ तथा 'ए' ने दोहा १, २, ७, १०, ११, १३, १४, १५, १८, २२, २३, ३४ दे कर अवशिष्ट दोहे छोड़ दिए हैं। ३४ संदिग्ध दोहों के अतिरिक्त परिशिष्ट २ (क) में इस ग्रंथ के २२ प्रक्षिप्त दोहे भी संकलित हैं और उन का पाठ भी 'अ' के आधार पर ही है। ये दोहे 'मानमंजरी' की आधारभूत किसी भी हस्तलिखित प्रति में नहीं मिले फलतः इन के कवि कृत होने की संभावना नहीं है।

इस ग्रंथ के कई नाम प्रतियों में पाए जाते हैं—'मानमंजरी', 'नाममंजरी', 'नाममाला', 'नामचिंतामणिमाला', 'मानमंजरी नाममाला'। इन में से अंतिम नाम अधिक सार्थक प्रतीत होता है क्योंकि राधा का मान तथा पर्यायवाची शब्दों की माला, ये दोनों ही ग्रंथ के मुख्य वर्ण्य विषय हैं।

अनेकार्थमंजरी

इस ग्रंथ की चार प्रतियों की परीक्षा की गई है:—

१ अ—यह पोथी सं० १८१८ से कुछ पहले लिखी गई थी[1]। इस में ११७ दोहे हैं।

२ आ—यह प्रति 'मानमंजरी' की 'ए' प्रति के साथ पाई जाती है अतएव इस का लिपि-काल भी सं० १८३५ के आसपास माना जा सकता है[2]। इस में १७५ दोहे हैं। 'मानमंजरी' की 'ए' प्रति के समान ही इस के अंत में भी रामहरी जौहरी ने यह उल्लेख किया है कि मूल 'अनेकार्थ' में १२० दोहे थे। बाकी दोहे अपनी रुचि के अनुसार उन्हों ने स्थान स्थान

---

[1] दे० 'विरहमंजरी' की 'ग' प्रति का परिचय

[2] दे० 'रूपमंजरी' की 'ट' प्रति का परिचय

पर बढा दिए हैं। अपनी इस ढिठाई की क्षमायाचना भी उन्हों ने नंददास से की है—

वीस ऊपरें एक सौ नंददास जू कीन।
और दोहरा रामहरि कीने हैं जु नवीन॥
श्रीमान श्री नंददास जू रसमद आनँद कंद।
रामहरी की ढीठता छमियो हो जगवंद॥
कोष मेदनी आदि औ कछू सब्द अधिकाइ।
मन रुचि लखि विच संधि दिय वाँचौ जा चित भाइ॥

इन दीन दोहों को पृथक् कर देने पर इस प्रति में १७२ दोहे रह जाते हैं। रामहरी के अनुसार इन में से १२० दोहे नंददास के तथा अवशिष्ट उन के वनाए हैं।

३ इ—प्रयाग विश्वविद्यालय की 'यूनिवर्सिटी स्टडीज़' मे प्रकाशित[१]। इस प्रति में १५८ दोहे हैं जिन मे से अंतिम ४ परिशिष्ट रूप में दिए गए हैं। 'मानमंजरी' के दोहो की भाँति इस के दोहो को भी अकारादि-क्रम से रक्खा गया है।

४ उ—इस पोथी का लिपि-काल सं० १९१९ है[२]। इस मे ११५ दोहे हैं। इस के दोहो को 'अ' के दोहों से मिलान करने पर यह विदित होता है कि इस ने 'अ' मे पाए जाने वाले 'पं' 'नग' तथा 'हरिनी' शीर्षक तीन दोहे और ग्रंथ-माहात्म्य का एक दोहा छोड़ दिया है किंतु इस में 'वर्ण' तथा 'निशा अजा' शीर्षक दो दोहे 'अ' से अधिक हैं।

इन चार पोथियों के साथ ही 'इ' की आधारभूत आठ हस्तलिखित प्रतियों के पाठों पर भी विचार किया गया है। इन मे से 'क' को "मालेवार" देश के किसी वासुदेव वाजपेयी ने सं० १८९४ मे लिखा था। 'ख' को कालका

---

[१] दे० 'मानमंजरी' की 'अ' प्रति का परिचय
[२] दे० 'मानमंजरी' की 'ऊ' प्रति का परिचय

दास नामक व्यक्ति ने सं० १९०३ में फ़ारसी अक्षरों में लिखा था, 'ग' का लिपि-काल अज्ञात है, 'घ' सं० १८७७ में लिखी गई, 'ट' "अत्यंत भ्रष्ट" नागरी लिपि में लिखी है, 'च' सं० १९२३ की लिखी हुई है तथा 'छ' टीकमगढ़ के लाला जानकीदास द्वारा सं० १९२१ में लिखी गई थी[1]। अंतिम प्रति 'ज' 'मानमंजरी' की 'छ' प्रति के साथ पाई जाती है[2] और इस के अंतिम दोहे की संख्या ११७ है। इस प्रति ने 'अ' के 'अर्जुन' तथा 'रसना' शीर्षक दो दोहे छोड़ दिए हैं और 'वस्त्र' तथा 'निशा अजा' शीर्षक दो अन्य दोहे दिए हैं।

'मानमंजरी नाममाला' की चार मुद्रित प्रतियों के परिचय के साथ ही 'अनेकार्थ' के भी संस्करणों का उल्लेख किया जा चुका है। इन में से अधिकांश प्रतियों ने १०वें दोहे के लगभग छाप वाला दोहा दे कर अवशिष्ट दोहे बाद में दिए हैं जिन से यह सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि बाद के दोहे कवि कृत नहीं हैं। इन प्रतियों को प्राचीन हस्तलिखित पोथियों से मिलाने पर यह भी ज्ञात होता है कि इन में छाप वाले दोहे के पहले भी प्रक्षिप्त दोहे हैं। 'पांचे मजुरीओं' की 'अनेकार्थ' की प्रति में केवल ११९ दोहे ही हैं किंतु इन के कुछ दोहे मान्य पोथियों में नहीं हैं।

सभा की प्रकाशित तथा अप्रकाशित रिपोर्टों में 'अनेकार्थ' की अनेक प्रतियों के विवरण मिलते हैं। प्राचीनता की दृष्टि से तीन प्रतियों का उल्लेख किया जा सकता है। अप्रकाशित खो० रि० सन् १९२६-२८ में सं० १८२७ तथा सं० १७७९ की दो प्रतियों का परिचय पाया जाता है। पहली प्रति के आदि-अंत के उद्धरणों के साथ ही ग्रंथ के विभिन्न शीर्षकों की एक सूची भी अन्वेषक ने दी है। दूसरी प्रति 'अनेकार्थ' की ज्ञात प्राचीनतम प्रति है और खानीपुर, बक्शी का तालाब, लखनऊ, के ठा० रणवीर

---

[1] दे० 'इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़', सन् १९३९, "अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला" की भूमिका, पृ० (ज)।

[2] दे० 'मानमंजरी' की 'छ' प्रति का परिचय

सिंह के पास उस का विद्यमान होना बतलाया गया है। किंतु ठा० रणवीर ने अपने पत्रोत्तर मे लेखक को यह लिखा है कि उन के पास कोई प्रति नही है। रिपोर्ट मे दिए हुए उद्धरणों से ज्ञात हुआ कि उस के अंतिम दोहे की सख्या ११६ है। वह दोहा इस प्रकार है—

भक्त नाम हरि को जपे निसु दिन और न ध्यान।
जाको पद भगवान को मिलि हितु का विधि मान ॥

यह दोहा अन्य किसी प्रति मे नही है। इस के पहले ग्रंथ-माहात्म्य तथा छाप का दोहा है। अवतरणो के अवशिष्ट दोहे अन्य प्रतियो से मेल खाते है। यदि इस दोहे को छोड़ दिया जाय तो इस प्रति मे ११८ दोहे रह जाते है। सन् १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में स० १८१४ की एक प्रति का निर्देश है। इस मे अंतिम दोहे की संख्या ११६ है। आदि अत के अवतरण 'अ', 'आ' तथा 'उ' के दोहों के समान ही है।

'अनेकार्थ' की एक अन्य प्रति काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी श्री महावीर सिह गहलौत द्वारा लेखक को प्राप्त हुई है। इस प्रति के पहले के तीन पत्र खडित है। अतिम दोहे की सख्या ११६ है जो अशुद्ध है। इसे ११८ होना चाहिए। आधुनिक होते हुए भी इस प्रति मे क्षेपक नही है। इस के पृष्ठो पर सुदर सुनहलेदार चौकोर हाशियो के भीतर दोहे लिखे गए है। यह प्रति श्री महावीर सिह के पितृव्य प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जगदीश सिह गहलौत के संग्रह की है।

'अनेकार्थ' मे नंददास कृत कितने दोहे थे इस विषय पर 'आ' प्रति के परिचय मे रामहरी के तीन दोहे ऊपर उद्धृत किए जा चुके है और हम ने देखा है कि उस के १७२ दोहों में से १२० नंददास के तथा अवशिष्ट रामहरी के है। 'अनेकार्थ' की शैली पर सं० १८३४ मे लिखे गए रामहरी के निजी ग्रंथ 'लघुशब्दावली' का उल्लेख किया जा चुका है। इस ग्रंथ में १०२ दोहे है। इन १०२ दोहों को 'आ' के १७२ दोहों से मिलाने पर ज्ञात होता है कि 'लघुशब्दावली' के ५२ दोहे 'आ' मे मिला कर रक्खे गए

है। 'आ' में इन ५२ दोहों को निकाल देने पर उस में १२० दोहे बच जाते हैं और इस प्रकार रामहरी का कथन बिलकुल ठीक उतरता है।

'आ' के अवशिष्ट १२० दोहों में 'बरन', 'निसा अजा' तथा 'सिह' शीर्षक तीन दोहे ही ऐसे हैं जो सं० १८१८ की लिखी 'अ' प्रति में नहीं हैं, शेष ११७ दोहे साधारण पाठांतरों के साथ एक से ही हैं। सं० १८२७ की लिखी प्रति में पाए जाने वाले विभिन्न शीर्षकों की सूची सभा के अन्वेषक ने दी है जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। इस सूची में 'बरन' तथा 'निसा अजा' शीर्षक दिए हुए हैं, केवल 'सिह' शीर्षक नहीं पाया जाता है। 'उ' में भी 'सिह' को छोड़ कर शेष दोनों नाम पाए जाते हैं। इस प्रकार 'आ' के १२० दोहों में निम्नलिखित दोहे को छोड़ कर शेष ११९ दोहे नंददास कृत माने जा सकते हैं—

सिह सूर बर राल इक बहुरि सिघ कों सिघ।
सिघ पौरि में दैत्य हत सिह नाद नरसिंह॥

'मानमंजरी' के समान 'अनेकार्थमंजरी' में किसी प्रकार की कथा का निर्वाह नहीं है। यह अवश्य है कि अनेकार्थी शब्दों को देते हुए कवि ने भगवद्भजन की नीति का बराबर पालन किया है—

गो इंद्री, दिव, बाक, जल, स्वर्ग, वज्र, खग, छंद।
गो धर, गो तरु, गो किरन, गो-पालक गोविंद॥

विभिन्न नामों के दोहों के क्रम में कोई विशेष सिद्धांत न होते हुए भी 'अ', 'आ' तथा अन्य प्रतियों में दोहों की परंपरा लगभग मिलती जुलती है। प्रस्तुत संस्करण में इस क्रम से कोई भिन्नता नहीं है।

परिशिष्ट २ (ख) में 'अनेकार्थमंजरी' के ३८ प्रक्षिप्त दोहे 'उ' प्रति के आधार पर उद्धृत किए गए हैं[1]। ये दोहे प्रस्तुत अध्ययन की किसी

---

[1] परिशिष्ट २ (ख), पृ० ४६४ पर भूल से इन्हें " 'अ' प्रति से उद्धृत" कहा गया है।

भी हस्तलिखित प्रति मे नही है।

स्यामसगाई

इस ग्रंथ की ग्यारह प्रतियाँ प्राप्त हुई है, जिन मे 'ग' से 'झ' तक की सात प्रतियाँ डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं—

१ अ—दिसंबर सन् १९३१ के 'विशाल भारत' से प्राप्त। संपादक के अनुसार यह प्रति उन्हे स्व० रत्नाकर जी से प्राप्त हुई थी।

२ क—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी, मे सुरक्षित। पुस्तक-सख्या ६। इस पोथी का लिपि-काल सं० १८७१ है।

३ ख—इस प्रति[1] का पाठ 'अ' से मिलता-जुलता है।

४ ग—जि० सं० ७००/१४ 'ए'। लिपि-काल सं० १८८८ है। प्रति खडित है।

५ घ—जि० सं० ७००/१४ 'बी'। इस प्रति का लिपि-काल सं० १८८८ के लगभग है।

६ ङ—जि० सं० १७६/२१। लिपि-काल सं० १८९० है। प्रति खंडित है।

७ च—जि० सं० ६३/१३। इस प्रति के छंदों के प्रारंभ में लिपिकार ने "तौ जी" तथा कही कही "अरी" भी जोड़ दिया है जिस से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस ग्रंथ के छंदो को साधारण ग्रामगीतों के रूप मे, कदाचित् विवाहादि अवसरो पर, गाया जाता था।

८ छ—जि० सं० २८/१४। यह प्रति किसी परमसुख मिश्र द्वारा सं० १९१० मे लिखी गई थी।

९ ज—जि० सं० ७६४/१४ 'ए'। 'च' तथा 'छ' प्रतियों के समान इस का अतिम छंद दोहा-रोला मे न हो कर चौपई छंद मे है। इस मे एक उल्लेख-

---

[1] दे० रूपमंजरी की 'ख' प्रति का परिचय

तीसरी बात यह है कि छाप के स्थान पर नंददास का नाम न हो कर किसी 'तारपान' का नाम दिया है। यह छाप इस ग्रंथ में कैसे आ गई इस विषय में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है।

१० ञ—जि० सं० ७६४/१४ 'बी'। यह प्रति खंडित है।

११ ट—बंध-संख्या २४, पुस्तक-संख्या १। श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली, से प्राप्त। इस प्रति का लिपि-काल सं० १६१७ है।

संख्या में अधिक होते हुए भी पाठ के विचार से उपर्युक्त कोई भी प्रति विशेष मान्य नहीं है। खो० रि० सन् १९०६-०८, संख्या २०० (ई) तथा खो० रि० १९१७-१९, संख्या ११६ (सी) पर क्रमशः विजावर राज्य पुस्तकालय तथा श्री देवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय, कामवन, के नाम से इस ग्रंथ की दो प्रतियों के उल्लेख हैं। "स्याम-सगाई और रुकमिनी-मंगल" के नाम से अग्रवाल प्रेस, प्रयाग, द्वारा सं० १९९० में प्रकाशित ग्रंथ में 'स्यामसगाई' प्रथम बार पुस्तकाकार रूप में मुद्रित हुई थी।

भँवरगीत

इस ग्रंथ की चौदह प्रतियों की परीक्षा की गई है। 'क' से 'झ' तक की नौ प्रतियाँ तथा 'ड' प्रति डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० १६६/५६। इस प्रति में 'जनमुकुंद' की छाप है।

२ ख—जि० सं० ७००/१४। यह प्रति सं० १८८८ की है। लिपि-कार की असावधानी के कारण अंतिम छंद में छाप वाली पंक्ति लिखने से रह गई है किंतु पुष्पिका में इसे 'जनमुकुंद' विरचित कहा गया है।

३ ग—जि० सं० ६८/१३। इस प्रति में कुछ छंदों का क्रम मुद्रित प्रतियों से थोड़ा भिन्न है परंतु इस से ग्रंथ के स्वरूप में कोई उल्लेखयोग्य परिवर्तन नहीं होता है।

४ घ—जि० सं० २८/१४। इस प्रति में 'भँवरगीत' के प्रचलित पाठों से कुछ भिन्नता है किंतु प्रति अशुद्ध है।

५ ड—जि० सं० १६७/५६। इस प्रति में तिथि इस प्रकार दी है—"श्रावण कृष्न. ५ वार॰रविवार संवत १८॰९॰"—इस से यह निश्चित नही हो पाता कि लिपि-कार का अभिप्राय सं० १८०९ से है अथवा १८९० से। 'वार' शब्द के बाद दिए हुए निरर्थक बिंदु को ध्यान मे रखते हुए कदाचित् इसे १८०९ पढना ठीक होगा। इस प्रति मे 'जनमुकुंद' की छाप है।

६ च—जि० सं० १६५/५६। इस प्रति का पाठ अशुद्ध है।

७ छ—जि० स० ३३५/५६। इस प्रति का लिपि-काल स० १८५७ है। यह आदि से खंडित और अशुद्ध है। इस मे 'जनमुकुंद' की छाप है।

८ ज—जि० स० ८००/५६। यह प्रति प्राचीन जान पड़ती है।

९ झ—जि० स० ५५९/५६। यह प्रति अंत मे खंडित है।

१० ट—काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यालय मे सुरक्षित[1]।

११ ठ—श्री विश्वंभरनाथ मेहरोत्रा द्वारा संपादित तथा प्रयाग के लाला रामनारायणलाल द्वारा प्रकाशित (सन् १९३२)।

१२ ड—जि० सं० १८४/३३। इस प्रति में केवल ४६ छंद है। यह अंत से खंडित है।

१३-१४ ढ, ण—भरतपुर राज्य पुस्तकालय मे सुरक्षित। पुस्तक संख्या '१७७ क' तथा '१८५ क'। इन दोनों प्रतियो मे 'जनमुकुंद' की छाप है। ग्रंथ के कुछ उलझन वाले स्थलो पर ही इन के पाठ का मिलान किया गया है।

नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट सन् १९२०-२२, संख्या ११३ (एफ) पर 'भँवरगीत' की एक आधुनिक पोथी की सूचना दी है जिस में 'जनमुकुद' की छाप है। सन् १९२९-३१ तथा सन् १९३८-४० की अ-प्रकाशित रिपोर्टो मे लाला सूरजपति, पो० कचौरा, ज़िला आगरा तथा प० विद्याराम शर्मा, पो० परतापनेर, ज़िला इटावा, के पते से इस ग्रंथ की

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ख' प्रति का परिचय

दो अन्य प्रतियों की सूचना प्राप्त होती है। सभा की रिपोर्ट के उद्धरण के अनुसार पहली प्रति 'भँवरगीत' की मुद्रित प्रतियों से भिन्न ज्ञात होती है। कन्नौज पाठ जाने पर लाला सूरजपति का कोई पता न चल सका।

'भँवरगीत' की बहुत सी प्रतियो मे 'जनमुकुंद' की छाप भी मिलती है। प्राप्त सामग्री से इस बात का निराकरण नही होता कि यह नंददास का ही उपनाम था। 'मिश्रबंधुविनोद' में 'जनमुकुंद' के नाम से 'ध्रुवगीता' नामक एक अन्य ग्रंथ का उल्लेख हुआ है[1]।

रुक्मिनी मंगल

इस ग्रंथ की चार प्रतियाँ प्राप्त हुई है—

१ क—जि० सं० १८०/५६। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इस प्रति में १३१ रोले है। इस का लिपि-काल अज्ञात है।

२ ख—'विशाल भारत', जनवरी, १९२९ मे प्रकाशित। संपादक के अनुसार यह प्रति उन्हें स्व० रत्नाकर जी से प्राप्त हुई थी और इस के लिपि-कार पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी है। इस मे भी १३१ रोले हैं।

३ ग—इस प्रति का लिपि-काल सं० १८३५ के लगभग माना जा सकता है[2]। इस में 'रुक्मिनी मंगल' के प्रस्तुत संस्करण के दो प्रारंभिक रोले तथा रोला ५० व १२९ नहीं है।

४ घ—बंध-संख्या ८, पुस्तक-संख्या १। श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली, से प्राप्त। यह प्रति सं० १८९१ की है। इस के बीच के कुछ पत्र खंडित है जिस से इस की छंद-संख्या नहीं ज्ञात होती है। इस प्रति के साधारणतया अशुद्ध होने पर भी कुछ स्थलो पर इस से विशेष सहायता मिली है।

---

[1] दे० द्वितीय संस्करण, भाग २, पृ० ४२१

[2] दे० 'रूपमंजरी' की 'ट' प्रति का परिचय

खो० रि० सन् १९१२-१४, संख्या १२० में एक प्रति की सूचना मिलती है। अप्रकाशित खो० रि० सन् १९२९-३१ में भी होलीपुरा, जिला आगरा, के किन्ही श्री विशेश्वरदयाल के नाम से एक प्रति उल्लिखित है जो कैथी लिपि मे लिखी है।

इस ग्रथ के एक प्रकाशित संस्करण का निर्देश किया जा चुका है[1]।

रासपंचाध्यायी

इस ग्रंथ की चौदह प्रतियो का उपयोग हुआ है। निम्नलिखित प्रथम छः प्रतियाँ ('क' से 'च' तक) डाक्टर भवानीशंकर याज्ञिक द्वारा प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० ५७/५६। इस प्रति मे लिपि-काल नही दिया है किंतु प्रति विशेष प्राचीन जान पडती है। अंतिम रोले की संख्या २१० है जो अशुद्ध है। इसे २१२ होना चाहिए। इस प्रति मे प्रयुक्त भाषा के रूपों से यह अनुमान होता है कि इस का लिपि-कार कोई व्रज-भाषी व्यक्ति ही रहा होगा।

२ ख—जि० सं० १०१/५६। इस प्रति मे कई स्थलो पर रोलाओं की संख्या देने मे भूल हो गई है। इस के अंतिम रोले की सख्या २९९ होनी चाहिए। यह प्रति असावधानी से किसी साधारण पढे-लिखे व्यक्ति द्वारा लिखी गई है फलत. इस मे अशुद्धियां पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है। पुष्पिका में सवत् आदि की सूचना नहीं है।

३ ग—जि० सं० १६९/५६। इस प्रति के छंदो के अत मे संख्याएँ नही दी है। इस मे ३०० रोले है। पाठ की दृष्टि से यह प्रति 'ख' के निकट पड़ती है। इस का लिपि-काल अज्ञात है।

४ घ—जि० सं० १७०/५६। अनुमान से यह प्रति भी 'क' के समान

---

[1] दे० 'स्यामसगाई' की प्रतियों का परिचय

की प्राचीन ज्ञात होती है। दोहा-संख्या की अशुद्धियों को ठीक करने पर अन्तिम रोले की संख्या २९९ ठहरती है। पंचम अध्याय में रोला २३३ के बाद लगभग अध्याय के अन्त तक के छंदों के क्रम में इस प्रति ने बहुत उलट-फेर कर दिया है। इस परिवर्तन का कारण स्पष्ट नहीं है।

५. ङ—जि० सं० १७२/५६। इस प्रति की पुष्पिका एक छप्पय मे दी हुई है। यह प्रति भरतपुर के राजा बलमत्त सिंह (बलवत सिंह?) के समय मे 'दीर्घ' (डीग) नगर में सं० १८९७ मे लिखी गई। लिपि-कार कोई कवि है जिस का उपनाम 'राम' है। इस मे ३४७ रोले है। अन्य किसी प्रति में इतने अधिक छद नहीं है। 'घ' की भाँति इस में भी पाँचवे अध्याय के रोलो के क्रम में उलट-फेर मिलता है किंतु 'ङ' में दिया हुआ क्रम 'घ' के क्रम से अधिक साम्य नहीं रखता है।

६ च—जि० स० १७३/५६। यह पोथी आदि तथा अंत से खंडित है। पाठ की दृष्टि से यह 'क' से बहुत मिलती-जुलती है।

७ छ—प० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा सपादित[1]। इस प्रति मे ३३९ रोले है। 'ङ' की भाँति इस की छंद-संख्या भी अधिक है परंतु इस के कुछ छंद 'ङ' मे पाए जाने वाले छंदों से भिन्न है।

८ ज—यह प्रति स्व० बाबू बालमुकुंद गुप्त द्वारा सपादित तथा कलकत्ते के भारतमित्र प्रेस द्वारा सन् १९०४ ई० मे मुद्रित हुई। भूमिका में गुप्त जी ने इस बात का निर्देश किया है कि उन्हों ने मथुरा की सं० १९४५ की लीथो की छपी एक प्रति तथा सं० १८९४ की छपी एक दूसरी प्रति की सहायता से इस प्रति का संपादन किया था। इस मे ३०६ छंद है—३०२ रोले तथा ४ दोहे। 'रासपंचाध्यायी' के कुछ आधुनिक संस्करण इस प्रति के पाठ से बहुत प्रभावित हुए है।

९ झ—सार्वभाषा पुस्तकालय, काशी, में सुरक्षित। पुस्तक-सख्या

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ख' प्रति का परिचय

६। इस प्रति में केवल २११ रोले है और इस का लिपि-काल सं० १८७१ के लगभग है। पाठ की दृष्टि से यह प्रति 'क' से साम्य रखती है।

१० ञ—पं० उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, साहित्यरत्न, के संपादकत्व मे लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागञ्ज, प्रयाग, द्वारा सन् १९३६ मे प्रकाशित। प्रकाशक के अनुसार 'पंचाध्यायी' का संपादन पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा हुआ है। इस प्रति मे ३१३ रोले हैं। इस की पाद-टिप्पणियो मे लगभग एक दर्जन प्रतियो के नामो से पाठातर दिए है किंतु प्रतियों के विवरण नही दिए गए है।

११ ट—भरतपुर राज्य पुस्तकालय मे सुरक्षित। पुस्तक-संख्या '१३७ क' है। इस प्रति के तीन पत्र खंडित हैं। यह सं० १८४५ की लिखी हुई है और इस के अंतिम रोले की संख्या २११ है। इस का पाठ 'क' प्रति से अधिक सादृश्य रखता है अतएव इस प्रति के कुछ चुने हुए स्थलो की ही परीक्षा की गई है।

१२ ठ—जिस जिल्द मे यह प्रति पाई जाती है उस मे इस प्रति के बाद ही 'फूलमंजरी' नामक ग्रंथ लिखा है जिस का लिपि-काल सं० १७९३ है[1]। इस से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस का लिपि-काल भी सं० १७९३ के आसपास ही होगा। इस में २०९ रोले है जो प्राय. 'क' तथा 'झ' के रोलों से मेल खाते है।

१३ ड—यह प्रति बाबू मुरारीलाल केडिया, नंदनसाहु का मुहल्ला, काशी, के 'श्री रामरत्न पुस्तकभवन' मे सुरक्षित नंददास कृत 'दशम स्कंध' के साथ पाई जाती है[2]। 'दशम स्कंध' के २८ अध्यायों के बाद लिपि-कार ने 'रासपचाध्यायी' लिखना प्रारभ किया है और प्रथम अध्याय की समाप्ति

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ड' प्रति का परिचय

[2] लेखक को इस प्रति की सूचना ना० प्र० स०, काशी, के अन्वेषक श्री महेशचंद्र गर्ग, एम० ए० द्वारा प्राप्त हुई है।

इस प्रकार सूचित की है—"इति श्री दशम स्कंध भाषा नंददास कृता एकोनत्रिंशोध्याय."। इसी प्रकार द्वितीय तथा तृतीय आदि अध्यायों की समाप्ति 'त्रिंश' तथा 'एकत्रिंश' आदि अध्यायों के नाम से की है। इस ग्रंथ की समाप्ति सं० १७५७ में हुई जैसा कि इस की पुष्पिका से विदित है—"संवत् १७५७ वर्षे मार्गशीर्ष सुदि १ शनौ दिने नाथू पंड्या सुत भगवानेन पुस्तकमिदं गोविंददासजीनां लिखितं पूर्णमियात्॥" इस प्रति का पत्र १५८ खंडित है। इस में अंतिम रोले की संख्या २१५ दी हुई है। यदि खंडित पत्र में १२ रोले लिखे मान लिए जायँ तो २१५ की रोला-संख्या ठीक उतरती है। प्राप्त प्रतियों में 'रासपंचाध्यायी' की यह प्राचीनतम प्रति है किंतु अशुद्ध होने के कारण इस के पाठों से विशेष सहायता नहीं ली जा सकी है।

१४ ढ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली, से प्राप्त। बंध-संख्या ४९ तथा पुस्तक-संख्या ३। 'ड' प्रति की भाँति यह प्रति भी 'दशम स्कंध' के साथ पाई जाती है किंतु अंत के पृष्ठों के खंडित होने के कारण 'रासपंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय के केवल ९८ रोले ही प्राप्त है।

नागरी प्रचारिणी सभा की प्रकाशित रिपोर्टों में इस ग्रंथ की तीन पोथियों के विवरण दिए है—(१) खो० रि० सन् १९०१, संख्या ६९ में सं० १८४८ की लिखी प्रति, (२) खो० रि० सन् १९०६-०८, संख्या २०० (ग) पर दी हुई प्रति जिस का लिपि-काल अज्ञात है तथा (३) खो० रि० सन् १९१७-१९, संख्या ११९ (बी) पर दी हुई सं० १७९४ की लिखी प्रति। सन् १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में सं० १८९८ तथा सं० १८८२ की दो प्रतियों की सूचनाएँ क्रमश. प० देवीराम, ग्राम बिचौली, पो० खैरागढ़, जिला आगरा, तथा ठा० तिलकसिंह, ग्राम सलीमपुर, पो० कोटाला, जिला आगरा, के पते से दी हुई है। इन में से कोई प्रति भी प्राप्त न हो सकी।

पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा भेजी हुई 'रासपंचाध्यायी' की एक

प्रति उस समय प्राप्त हुई जब कि 'पंचाध्यायी' का प्रस्तुत संस्करण छप रहा था। इस प्रति की जिल्द मे नददास की 'अध्यात्मपंचाध्यायी' तथा कुछ अन्य कवियो के ग्रंथ भी है। 'पचाध्यायी' की प्रति मे २०८ रोले है और इस का पाठ प्राय. 'क' प्रति से मिलता हुआ है। यह विक्रम की २०वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की लिखी हुई है।

छद-सख्या की दृष्टि से 'रासपंचाध्यायी' की उक्त प्रतियों को हम तीन वर्गों मे विभक्त कर सकते है। 'क', 'च', 'झ', 'ट', 'ठ' तथा 'ड' प्रतियो का एक वर्ग बनाया जा सकता है जिस मे 'ठ' की छंद-संख्या २०६ कम मे कम है तथा 'ड' की संख्या २१५ अधिक से अधिक है। 'ख', 'ग' तथा 'घ' की छंद-सख्या ३०० के आसपास की है अतएव उन का एक पृथक् वर्ग बनाना उचित होगा। इसी प्रकार 'ङ', 'छ'. 'ज' तथा 'ञ' प्रतियो का एक तीसरा वर्ग भी हो सकता है जिस मे 'ञ' की छंद-संख्या ३१२ कम से कम तथा 'ङ' की संख्या ३४७ अधिक से अधिक है। प्रत्येक वर्ग की केवल अधिकतम सख्या की तुलना करने पर पहले तथा दूसरे वर्ग मे ८५ छंदो का, दूसरे तथा तीसरे मे ४७ का और पहले व तीसरे मे १३२ का अंतर ज्ञात होता है। कवि की कृति की यह अनेकरूपता ही इस बात की द्योतक है कि वह अपने मूल रूप में नही है। प्राचीन प्रतियो पहले वर्ग मे है तथा संख्या मे भी अधिक है। अत. इस धारणा को बल भी मिलता है। सैकड़ो वर्षो तक प्रतिलिपि-क्रिया होते रहने से असावधान लिपि-कारो की प्रतियो मे कुछ छदो के भूल से छूट जाने की कल्पना युक्तियुक्त है, किंतु लगभग ३५० छदो के ग्रथ मे १३२ छंदो के छूट जाने का अनुमान लगाना क्लिष्ट कल्पना करना ही कहा जायगा।

उपर्युक्त वर्गो मे तृतीय वर्ग का पक्ष सब से निर्बल है। दिए हुए विवरण से विदित होता है कि इस वर्ग की तीन प्रतियाँ—'छ', 'ज', 'ञ', आधुनिक समय के सपादित सस्करण है। 'छ' तथा 'ञ' के आधार के संबंध मे हमे कुछ भी ज्ञात नही है। 'ज' प्रति सं० १८९४ तथा सं० १९४५

की दो प्रतियों पर अवलंबित है। 'ड' सं० १८९७ की एक हस्तलिखित प्रति है। अतएव प्राचीनता के विचार से कोई प्रति महत्त्वपूर्ण नहीं है। इन वर्ग की प्रतियों का पाठ भी संतोषजनक नहीं है। जैसा कि नीचे दिए हुए उदाहरण से ज्ञात होगा कहीं कहीं इन के छंद संदर्भ के विचार से विशेष आपत्तिजनक प्रतीत होते हैं।

कृष्ण के अंतर्ध्यान होने के बाद 'पंचाध्यायी' के चतुर्थ अध्याय मे पुनः प्रकट होने पर गोपियाँ मन मे मुसकराती हुई कृष्ण से यह प्रश्न पूछती हैं—कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो अपनी सेवा करने वाले का ध्यान रखते हैं, दूसरे अपनी सेवा अथवा अपने से स्नेह न करने वाले का भी ध्यान रखते हैं किंतु हे कृष्ण! उन व्यक्तियों को हम किस नाम से पुकारें जो अपनी सेवा करने वाले तथा न करने वाले दोनों ही प्रकार के मनुष्यों की उपेक्षा करते हैं[1]। इस प्रश्न के उत्तर में 'ज' प्रति ने 'पंचाध्यायी' की पंक्ति ८३६ के बाद तीन छंद दिए हैं जो स्पष्ट ही 'भागवत' के अनुकरण पर हैं। तीसरे वर्ग की 'ग' प्रति ने भी इन्हे दिया है। वे छंद इस प्रकार हैं—

जे भजते को भजैं आपने स्वार्थ के हित।
जैसे पसू परस्पर चाटत सुख मानत चित॥
जे अनभजते भजैं वहै धर्मी सुखकारी।
जैसे मात पिता जु करें सुत की रखवारी॥
जे दोउन को तजैं तिन्हें ज्ञानी जानों तिय।
आप्तकाम अथवा गुरु द्रोही अकृतज्ञ हिय॥

'भागवत' में इस उत्तर के साथ दो और श्लोक जुड़े हुए हैं—

"किंतु हे सखियो मैं यद्यपि भजनेवालोंको भी नहीं भजता, तथापि इन चारों में नहीं हूँ, वरन् महादयालु और परम सुहृत् हूँ। मैं उनको नहीं भजता इसलिये वे निरन्तर सब समय मेरा ही ध्यान किया करते

[1] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ८३३-३४

लाल रसाल के व्यंग बचन सुनि थकित भई यौं ।
बाल-मृगिनि की पाँति, सघन बन भूलि परी ज्यौं ।।
मंद परस्पर हसी, लसीं तिरछी अँखियन अस ।
रूप-उदधि इतराति, रँगीली मीन-पाँति जस ।।

उपर्युक्त छः छंदो मे दूसरा, तीसरा तथा चौथा छंद प्रधानतया 'ख' प्रति के आधार पर मूल पाठ मे रक्खा गया है। इन तीन छंदो के पूर्वापर का संबंध बहुत समीचीन नही है। तीसरे छंद का विचार न तो दूसरे से संबद्ध है और न चौथे से। उस में यह कहा गया है कि सर्व-गुण-सपन्न तथा स्वरूपवान नायक के समस्त गुण व्यर्थ हो जाते है यदि उस में वचन-वक्रता तथा कुटिल कटाक्ष फेकने की किंचित क्षमता भी नही है। यह कथन प्रथम छंद की व्याख्या-स्वरूप है क्योकि उसी छंद की दूसरी पक्ति मे व्यग्य-कथन तथा वकिम दृष्टि की महत्ता का निर्देश है। पाँचवें छंद मे कृष्ण के व्यंग्य वचनो का उल्लेख है और इस छद का संबंध भी प्रथम छद से ही है क्योकि कृष्ण के व्यंग्य-वचन उसी छद मे है। इस के अतिरिक्त छठे छंद के "मंद परस्पर हसी" शब्द भी ध्यान देने योग्य है। कृष्ण के व्यंग्य वचनो को सुन कर पहले तो गोपियाँ कुछ काल तक मार्ग भूली हुई हरिणियो के समान हतबुद्धि हो कर खड़ी रह जाती है किंतु पुनः एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराने लगती है। इस मंद मुसकान का क्या कारण हो सकता है ? प्रथम छंद में कृष्ण कहते है कि उत्कृष्ट प्रेम का यह लक्षण है कि वह कुछ कुटिलता होने से ही शोभित होता है। इस कथन द्वारा वे यह प्रेमपूर्ण उपहास ध्वनित करते है कि रात्रि मे लोक-लाज का सर्वथा परित्याग कर के आई हुई गोपियाँ अत्यंत कुटिल है। कदाचित् इस व्यंग्य को समझने पर ही गोपियाँ एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराने लगती है। दूसरे छंद मे यह कहा गया है कि भोली गोपियाँ कृष्ण के अभिप्राय को नही समझ सकी जो बहुत संगत नही ज्ञात होता क्योकि यदि गोपियों ने कृष्ण का अभिप्राय समझा ही न था तो वे किस बात को लक्ष्य

कर एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराई।

द्वितीय वर्ग की 'ग' प्रति ने ऊपर उद्धृत तीसरे व चौथे छंद को नही दिया है। 'घ' ने चौथे को छोड़ दिया है। प्रथम वर्ग की किसी भी प्रति मे ये तीन छंद नही हैं। तृतीय वर्ग की अधिकांश प्रतियाँ ही इस विषय मे 'ख' का साथ देती है। इन बातों से भी उपर्युक्त तीनों रोलो की प्रामाणिकता विशेष विचारणीय प्रतीत होती है।

इस वर्ग की प्रतियों के छंद अन्य प्रकार की कठिनाइयाँ भी उपस्थित करते है और इन के संबंध में हमारे निष्कर्ष अधिक दृढ़ हो सकते है जैसा कि 'घ' प्रति के इन दो रोलों मे देखा जाता है—

मोहन पिय की मल्हकनि ढलकनि मोर मुकट की।
सदा बसौ मन मेरें फरकनि पियरे पट की॥
बदन कमल चित चोर ओर यों राजति अलकनि।
सदा बसौ मन मेरे मंजुल मोर की ढलकनि॥

इन छंदों मे से संभवतः एक ही छंद कवि विरचित होगा। प्राचीन प्रतियो मे प्राप्त एक रोले का परिवर्द्धित रूप भी इस वर्ग की प्रतियो मे मिलता है। 'क' प्रति का एक छंद इस प्रकार है—

तब आरंभित रास उदित उहि कमल चक्र पर।
नमित न कबहूँ होत सबै निर्त्तत बिचित्र वर॥

'घ' में इस के स्थान पर दो छद है—

तब ही यह सुरतरु तर पिय सुंदर गिरिवर घर।
आरंभत अद्भुत नु रास उहि कमल छत्र पर॥
एक काल ब्रज बाल लाल सब चढ़े जोरि कर।
नमित न कितहूँ होय सबै निर्तत विचित्र वर॥

जैसा कि 'मानमंजरी नाममाला' की प्रतियों की परीक्षा करते हुए कहा जा चुका है ऐसे छंदों की प्रामाणिकता अत्यंत संदिग्ध है।

छदो के अतिरिक्त अन्य प्रतियों के शीर्षकों में दिए हुए छंदों को भी प्रतियों ने दिया है। नीचे दी हुई सूची से इस बात का परिचय मिल सकेगा—

प्रति छद-सख्या

ग—७६, ८१, ८२, ८३

घ—१, ५८, ७६

ङ—५, ७ से १२ तक, ६८, ७३, ७५, ७६

छ—१, ५, ७, ६, ११, १७, ३५, ३६, ३८ से ४१ तक, ५०, ५१, ७६, ७८, ८१ से ८३ तक,

ज—३५, ३६, ३८ से ४१ तक, ५०, ५१, ६७, ६९ से ७३ तक

ब—३८ से ४१ तक, ६७, ७०, ७१

परिशिष्ट मे दिए छदों के ऊपर ही यह भी सूचित किया गया है कि वे 'पंचाध्यायी' के प्रस्तुत सस्करण की किस पंक्ति के बाद मिलते है। उन के क्रम आदि में भी कहीं कहीं उलट-फेर है और ऐसे स्थलों पर यह कह देने से पूर्ण संदर्भ का बोध नही होता कि अमुक छद अमुक पंक्ति के बाद है किंतु विस्तार-भय से इन बातों का निर्देश नही किया जा सका है।

'रासपचाध्यायी' की प्रतियो मे 'सिद्धात पचाध्यायी' के भी कतिपय छंद मिश्रित मिले है। 'रासपंचाध्यायी' की 'ठ' प्रति ही ऐसी है जिस का लिपि-कार इन दो कृतियो के स्वतंत्र अस्तित्व से परिचित था क्योंकि उस ने एक ही जिल्द में दोनो ग्रंथों को लिखा है। अतः इस विषय मे 'ठ' प्रति का ही अनुसरण किया गया है किंतु जो छद इस जिल्द की प्रतियों में भी समान रूप से दोनो ग्रंथों मे है उन्हे यथास्थान रक्खा गया है।

सिद्धांत पंचाध्यायी

इस ग्रथ की चार प्रतियाँ मिली है—

१ क—श्रीनाथद्वारा के सग्रहालय मे सुरक्षित एक प्रति की प्रति-लिपि। प्रतिलिपि-कार पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी है और उन्ही से लेखक

को यह प्रति प्राप्त हुई है। इस में १३८ रोले हैं। मूल प्रति का लिपि-काल अज्ञात है।

२ ख—इस प्रति का लिपि-काल सं० १८३५ के लगभग माना जा सकता है[1]। यह 'क' की अपेक्षा कुछ अशुद्ध अवश्य है किंतु साधारणतया इस का पाठ 'क' के सदृश ही है।

३ ग—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित प्रति। इस प्रति के संपादन में चतुर्वेदी जी ने लगभग छः प्रतियों का उपयोग किया है किंतु कारण-वश उन प्रतियों के संवत् आदि के विवरण ज्ञात न हो सके। यह प्रति 'व्रजभारती' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित भी हो चुकी है।

४ घ—पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी से प्राप्त। यह प्रति सं० १९३७ की लिखी है। 'रासपंचाध्यायी' की प्रतियों के विवरण में यह कहा जा चुका है कि यह प्रति प्रस्तुत संस्करण के प्रेस में जाने के बाद प्राप्त हुई थी। साधारणतया अशुद्ध होते हुए भी इस प्रति के कुछ पाठ ऐसे मिले जो अन्य प्रतियों में नहीं प्राप्त हो सके थे। फलत थोड़े से स्थलों में मूल पाठ में आवश्यक परिवर्तन कर लिए गए हैं और अवशिष्ट ज्ञातव्य पाठ परिशिष्ट ३ में दिए गए हैं। इस प्रति ने ग्रंथ का नाम 'अध्यात्म पंचाध्यायी' दिया है। 'सिद्धांत पंचाध्यायी' के संपादन में एक दो स्थलों पर 'घ' के पाठांतरों को भी ग्रहण किया गया है।

दशम स्कंध

इस ग्रंथ की पाँच प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० ४५६/१४। डा० भवानीशंकर से प्राप्त। इस प्रति का लिपि-स्थान गोकुल है तथा लिपि-काल सं० १८५७ है। यह साधारणतया शुद्ध है। इस में २९ अध्याय हैं।

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ट' प्रति का परिचय

२ ख—यह प्रति 'वाणी प्रकाशक मण्डल', अमृतसर, द्वारा सन् १९३२ मे मुद्रित हुई थी और विना मूल्य वितरित कर दी गई थी। इसी से यह अव प्राय. अप्राप्य सी है। लेखक को इस की एक प्रति डा० भवानीशंकर द्वारा प्राप्त हुई थी। इस के 'सशोधक' श्री कर्मचन्द गुग्गलानी हैं। इस का संपादन चार प्रतियो के आधार पर हुआ था जिन में प्राचीनतम प्रति सं० १७६४ की थी। इस प्रति की एक विशेपता यह है कि इस में अन्य प्रतियों से अधिक पंक्तियां मिलती हैं। कही कही इस प्रति ने पाठ के क्रम में भी वहुत अतर कर दिया है। इस मे २८ अध्याय है। भूमिका मे विद्वान् संपादक ने इस ग्रंथ के आधारो पर प्रकाश डाला है।

३ ग—प० जवाहरलाल चतुर्वेदी से प्राप्त। इस के ८१, ९८ तथा १५८ संख्यक पत्र खडित है। अत से खडित होने के कारण प्रति का लिपि-काल ज्ञात नही है किंतु प्रति प्राचीन अवश्य जान पड़ती है। यह विशेष सावधानी के साथ लिखी गई है और इस का पाठ अन्य प्रतियों से वहुत शुद्ध है। अतएव प्रस्तुत संपादन मे इस पोथी से विशेष सहायता ली गई है। इस मे २९ अध्याय है।

४ घ—यह प्रति काशी के श्री रामरत्न पुस्तकभवन के संस्थापक श्री मुरारीलाल केडिया के संग्रह की है। इस का लिपि-काल सं० १७५७ है और ज्ञात प्रतियों मे यह 'दशम स्कंध' की प्राचीनतम प्रति है। इस ने भी 'क' के समान वहुत से स्थल छोड़ दिए है। खेद है इस प्राचीन प्रति का पाठ बहुत अशुद्ध है। इसी से इस के समस्त पाठ का मिलान नही किया गया है।

५ ङ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कॉकरौली, से प्राप्त। इस प्रति का पाठ भी 'घ' के समान ही अशुद्ध है और इस मे भी २८ अध्याय हैं। खोज रिपोर्ट सन् १९०१, संख्या ११, तथा खोज रिपोर्ट सन् १९०६-०८, संख्या २०० (बी) मे इस ग्रंथ की दो प्रतियों के उल्लेख है।

पदावली

नंददास कृत पद निम्नांकित नी प्रतियों से संगृहीत है—

१ क—'कीर्तन संग्रह' भाग १, २ तथा ३। यह ग्रंथ सं० १९९३ में दूसरी बार "श्री वीर विजय प्रिन्टींग प्रेस", अहमदाबाद, से मुद्रित हुआ। इस के प्रकाशक तथा संग्राहक लल्लुभाइ छगनमल देसाई हैं। इस बृहत् ग्रंथ के भाग १ में कृष्णजन्माष्टमी से ले कर रक्षाबंधन तक वर्ष के विभिन्न उत्सवों के पद संकलित हैं। भाग २ में वसंत, डोल, होली आदि के तथा भाग ३ में 'मंगला', 'राजभोग', 'उत्थापन' आदि से संबंधित नित्य गाए जाने वाले पद मिलते हैं। वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में इस ग्रंथ का विशेष प्रचार है। ऐसा कहा जाता है कि इस के प्रकाशित हो जाने से मंदिरों के कीर्तनियों में हस्तलिखित पोथियों के रखने का चलन ही उठ गया है। गुजराती वैष्णवों के संरक्षण में मुद्रित होने के कारण इस ग्रंथ के पाठ में, स्वभावतः, प्रादेशिकता की मात्रा बहुत अधिक है।

२ ख—बंगीय साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित श्री कृष्णानद व्यासदेव कृत 'संगीत राग कल्पद्रुम' (१९१४ ई०)। इस ग्रंथ से नंददास के १६ नए पद मिले हैं।

निम्नलिखित पाँच पोथियाँ डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं—

३ अ—जि० सं० २६२/८२। इस पोथी में नंददास के केवल सात पद हैं और उस का लिपि-काल सं० १८४९ है।

४ आ—जि० सं० ६६८/४५। इस पोथी के होली तथा धमार संबंधी पदों में नंददास के लगभग एक दर्जन पद हैं।

५ इ—जि० सं० ५७७/४५। इस पोथी से केवल एक पद मिला है।

६ ई—जि० सं० २६३/४७। इस पोथी का लिपि-काल सं० १८८१ है और उस में नंददास के ४७ पद हैं।

७ उ—जि० सं० ३८७/४५। यह प्रति गुजरात की छपी हुई जान

पड़ती है क्योंकि इस के पदों की अनुक्रमणिका के ऊपर "पदनो नाम" शीर्षक पड़ा है। इस का मुख-पृष्ठ फटा है अतः प्रकाशक आदि के संबंध मे कुछ भी ज्ञात नही हुआ। 'क' तथा इस प्रति का पाठ एक सा ही है। संभवतः 'क' के संग्राहक ने इस का उपयोग किया है। इस मे नंददास के लगभग ४५ पद है।

८ ऊ—'नंददास पदावली', संपादक पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी। यह ग्रथ अभी पूर्णतया छप नही सका है। जिस समय लेखक मथुरा गया था इस का केवल 'नित्य कीर्तन' ही छपा था जिस में ११८ पद है। चतुर्वेदी जी के अनुसार समग्र ग्रथ मे लगभग ७०० पद है।

९ ए—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा प्राप्त। इस प्रति मे नंददास के लगभग ३० पद है।

ऊपर दी हुई प्रतियों से कवि के २८३ पद प्राप्त हुए है। प्रस्तुत संस्करण मे कोई भी ऐसी सामग्री मूल पाठ में नही दी गई है जो पोथियो द्वारा न प्राप्त हुई हो। इस विचार से इन समस्त पदों को मूल पाठ में नही ग्रहण किया जा सकता था क्योंकि इन मे अधिकाश पद मुद्रित सस्करणों से सकलित है। जो पद पोथियो में मिले भी उन मे पाठ की गड़बड़ी इतनी अधिक मिली कि उन का सपादन नही हो सका। अतएव मूल पाठ मे केवल ३५ पद दिए गए है, अवशिष्ट २४८ पद परिशिष्ट १ (ग) मे संगृहीत है।

फुटकर पदों के वर्गीकरण की समस्या भी सरल नही है। 'क' प्रति ने समस्त पदों को 'वर्षोत्सव' तथा 'नित्य कीर्तन' शीर्षकों मे वर्गीकृत किया है किंतु इस ग्रथ मे ऐसे अनेक पद है जो दोनों शीर्षकों के अंतर्गत समान रूप से मिलते है। यह वर्गीकरण प्रधानतया धार्मिक दृष्टि से है और कदाचित् साहित्यिक क्षेत्र मे विशेष उपयोगी सिद्ध न होगा। प्रस्तुत संस्करण में मूल पाठ के पदो को विषय के अनुसार कुछ शीर्षकों मे विभक्त कर दिया गया है। उन के पीछे कोई निश्चित सिद्धांत नही है।

संपादन-विधि

किसी भी ग्रंथ के मद से अधिक संभवित मूल रूप का उद्धार करना ही उस ग्रंथ के संपादन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। इस संभवित रूप तक पहुँचने का प्रधान साधन उस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। हस्तलिखित प्रतियों में भी जो कवि के रचना-काल तथा निवासस्थान से अधिक निकट हैं उन के पाठों के प्रामाणिक होने की अधिक संभावना है। नंददास के काव्यग्रंथों का प्रस्तुत संपादन यथासंभव ऐसी ही प्रतियों के आधार पर हुआ है। 'रासपंचाध्यायी', 'भँवरगीत' आदि के मुद्रित संस्करणों में ऐसे बहुत से पाठ मिले जिन का पोथियों में कोई अस्तित्व न था। अतएव विवश हो कर उन्हें मूल पाठ से हटा देना पड़ा।

कवि की भाषा के व्याकरण के रूपों को स्थिर करने में पोथियों की प्रवृत्तियों के अध्ययन के साथ ही प्रयोगों की ऐतिहासिकता पर विचार करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है—कम से कम प्राचीन तथा आधुनिक प्रयोगों की जानकारी से हमारे निष्कर्षों में अधिक दृढ़ता आ जाती है। इस प्रणाली का जिस रूप में उपयोग हुआ है उस के कुछ व्यावहारिक उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१. मथुरा तथा भरतपुर आदि स्थानों की प्रतियों में अर्द्ध-विवृत **ऍ-ऑ** ध्वनियाँ क्रमशः ऐ-औ द्वारा व्यक्त की गई हैं जिस से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि की मूल कृति में भी इन्हें इसी रूप में लिखा गया होगा। कहीं कहीं पोथियों ने तत्सम शब्दों को भी इसी प्रकार लिखा है जैसे 'सैजन्य', 'प्रैम', 'रौस', 'जौति'। उच्चारण की दृष्टि से इन परिवर्तनों का मिलना स्वाभाविक है किंतु पोथियों में ये रूप नियमित रूप से नहीं हैं। फलतः इन्हें प्रश्रय देना उचित नहीं है।

तत्सम शब्दों की 'ङ्', 'ञ्', 'ण्' आदि अनुनासिक तथा 'श्', 'ष्' आदि अन्य ध्वनियाँ भी नियमित रूप से नहीं प्रयुक्त हुई हैं। 'सङ्ग', 'चञ्चल',

'मणि', 'शास्त्र', 'शेष', 'शुकदेव' आदि प्रचलित शब्द क्रमशः 'संग', 'चंचल', 'मनि', 'सास्त्र', 'सेस', 'सुखदेव' के रूप मे अधिक संख्या मे मिलते है। अप्रचलित या कम प्रचलित शब्दो के संबंध मे परिस्थिति भिन्न है। प्रतियों ने 'अश्रप', 'किल्विष', 'शोषन', 'विश्रब्ध', 'निश्चित', 'धिषन', 'श्रमकन', 'आश्रय', को 'अस्रप', 'किल्विस', 'सोसन', 'विस्रब्ध', 'निस्चित', 'धिसन', 'स्रमकन'. 'आस्रय' कर के नही लिखा है। ऐतिहासिकता के विचार से कवि के समय इन ध्वनियों का उच्चारण चाहे जिस प्रकार से होता रहा हो किंतु जब प्रतियों ने तत्सम रूपों को ग्रहण किया है तब हमे भी इन्हे इसी रूप मे रखना चाहिए।

२. परसर्ग **'कौं'** की अनुनासिकता एक विवादग्रस्त विषय है। मान्य प्रतियो ने कर्म-संप्रदान मे इसे बहुधा अनुनासिक रूप मे रक्खा है किंतु षष्ठी के अर्थ मे वे इस के अनुनासिक तथा निरनुनासिक दोनों रूप व्यवहृत करती है। प्राचीन ब्रज में कर्म-संप्रदान मे दोनो रूप तथा संबंध मे निरनुनासिक रूप ही मिलते है[1]। आधुनिक ब्रज में भी मथुरा के आसपास संबंध में निरनुनासिक रूप पाए जाते है[2]। संभवतः कवि के समय मे भी इस अर्थ में निरनुनासिक रूप (अर्थात् 'कौ') का ही चलन रहा होगा। अतः इसे ग्रहण कर लिया गया है।

संज्ञाओं तथा सर्वनामो में 'हि' अथवा 'हिं' प्रत्यय लगा कर अनेक संयोगात्मक रूप विभिन्न कारकों के लिए पोथियों में प्रयुक्त हुए है। इन में संज्ञाओं के रूप बहुधा निरनुनासिक 'हि' के योग से बने है (जैसे 'अलि बिन **कमलहि** को पहिचानै', 'मन-बच-क्रम जु **हरिहि** अनुसरे')। षष्ठी के अर्थ मे सर्वनामों के रूप भी प्राय. निरनुनासिक है (जैसे **जिहि** भीतर जगमगत, निरंतर कुँवर कन्हाई', 'सो पुनि **तिहि** संगति निस्तरी'), किंतु

---

[1] डा० धीरेन्द्र वर्मा : 'ब्रजभाषा व्याकरण', पृ० १२३, १२५
[2] डा० धीरेन्द्र वर्मा : 'ला लाँग ब्रज', पृ० ९८

अन्य कारकों के लिए उन के अधिकांश रूप सानुनासिक मिलते हैं (जैसे 'सुर मुनि रीझत जिहिं', 'जिहिं निरखत नासैं', 'मोहिं नहिं करिहौ दासी', 'इनहिं निवेसिन कीजै')। प्राचीन ब्रज में सूरदास में संज्ञाओं में भी सानुनासिक रूप मिलते हैं[1] (जैसे 'पूतहिं भले पढावति')। इस ग्रंथ में संज्ञा तथा सर्वनाम के रूपों में एकरूपता न स्थापित कर के पोथियों की प्रवृत्ति का अनुसरण किया गया है।

३. संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के साथ प्रयुक्त केवलार्थक तथा समेतार्थक अव्यय 'हि' तथा 'हु' नियमित रूप से मिलते हैं (जैसे 'प्रथमहि प्रगटौं प्रेममय', 'सुनतहि मोहन मुख की बानी', 'सरद कमल दलहू तैं नीने')। सर्वनाम के साथ इन रूपों के अतिरिक्त इन के सानुनासिक रूप भी प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। बहुधा यह देखा गया है कि अनुनासिक ध्वनियों वाले सर्वनामों के साथ के अव्यय भी अनुनासिक हो गए हैं। प्रतियों ने 'न' की अपेक्षा 'म' के बाद के अव्ययों में अधिक अनुनासिक रूप दिए हैं। इस का कारण कदाचित् यह है कि 'म' के उच्चारण में 'न' से अधिक सानुनासिक प्रतिक्रिया होती है। इस संस्करण में अनुनासिक ध्वनियों के बाद में आने वाले 'हि' तथा 'हु' में अनुनासिकता रक्खी गई है, अन्य रूपों में नहीं (जैसे 'ताकौ प्रभु तुम हीं आधार', 'तिन हुँ सबै बिधि सोधी' इत्यादि; तथा 'जितहि धरयौ हौ तितही पायौ', ताहू तैं सतगुनी, सहस किधौं कोटि गुनी है')।

भाषा के अन्य प्रयोगों के रूप भी इसी प्रकार निश्चित किए गए हैं। बहुत से ऐसे प्रयोग भी हैं जिन के संबंध में प्रस्तुत अध्ययन से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका है जैसे सप्तमी के परसर्ग 'परि', 'पर', 'पै' में रूचि द्वारा वस्तुगत रूप बनाना कठिन है। इसी प्रकार होहि-होइ, मानहुँ-मानौं, कान्ह-कान आदि दोनों प्रकार के रूप इस संस्करण में मिलेंगे।

---

[1] डा० धीरेन्द्र वर्मा : 'ला लाँग ब्रज', पृ० ६९

यह सच है कि 'परि' और 'हौंहि' आदि प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन हैं किंतु कवि के समय की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान तो तभी हो सकता है जब उस के ग्रंथो की तथा अन्य समसामयिक लेखकों की प्राचीन पोथियों को बडी संख्या में एकत्रित कर के समस्त रूपों की गणना की जाय। तभी ठीक स्थिति का पता चल सकेगा। इस संस्करण मे प्राप्त पोथियों के भी विभिन्न प्रयोगो के समस्त रूपो की गणना नही की जा सकी है। प्रतियो की परीक्षा करते समय जो प्रवृत्तियाँ लक्षित हुई उन्ही के आधार पर विचार किया गया है।

कुछ असाधारण प्रयोग भी हस्तलिखित प्रतियो में अधिक मिले जैसे 'हौंइ' ('बैठे हौइ सावरे जहाँ', 'कर्म बुरे जौ हौंहि')। इस के साधारण रूप होइँ अथवा हौंहि के साथ ही इसे भी मूल पाठ मे रख लिया गया है।

प्रस्तुत सस्करण में भाषा की एकरूपता उसी सीमा तक रक्खी गई है जहाँ तक वह पोथियों से पुष्ट हो सकी है। किन्ही सिद्धांतो का आरोप कर के शब्दो मे परिवर्तन नही किया गया।

नददास के किसी ग्रंथ की रचना-तिथि ज्ञात नहीं है। खोज रिपोर्ट सन् १९२०-२२, सख्या ११३ (ए) पर 'नाममाला' की एक प्रति के विवरण मे उस की रचना-तिथि स० १६२४ दी गई है जो स्पष्ट ही भूल है क्योकि उक्त ग्रंथ के पाठ में कही पर भी यह तिथि नही है। संभवत. कवि के संभवित कविता-काल के भ्रम से ही इस तिथि को रचना-तिथि के रूप मे लिखा गया है। अतएव रचना-काल के आधार पर कवि के ग्रंथों का कोई क्रम निर्धारित नही हो सकता है। शैली की प्रौढता के विचार से भी ग्रथों का क्रम निश्चित करना संभव है परंतु इस आधार मे कोई निश्चयात्मकता नही हो सकती। इन कठिनाइयो के कारण इस संस्करण के ग्रंथो का क्रम छद के आधार पर रक्खा गया है। इस के प्रथम पाँच ग्रंथ दोहा-चौपई मे है, उस के बाद दो ग्रथ दोहा मे, तत्पश्चात् दो दोहा-रोला-टेक के मिश्रित रूप मे, पुनः दो रोला छंद मे है। 'दशम स्कंध' को अपने सिद्धांत के अनुसार

पञ्चमंजरियों के बाद रखना चाहिए था किंतु उस के विस्तृत रूप के कारण ऐसा नहीं किया गया। अंत मे कवि कृत कुछ फुटकर पद संकलित हैं।

परिशिष्ट १ में 'संदिग्ध तथा असंपादित सामग्री', २ में 'प्रक्षिप्त सामग्री', ३ में 'पाठांतर', ४ मे 'पदो की प्रथम पंक्ति की अकारादि-क्रम-सूची' तथा ५ में 'शब्दार्थ-कोष' है।

मूल पाठ मे प्रत्येक पांचवी पंक्ति के सामने उस की क्रम-संख्या के अंक दिए हुए हैं। पाठांतरों के देखने मे इस से विशेष सुभीता होगा। पोथियो से प्राप्त समस्त पाठांतरों को देने से ग्रंथ-विस्तार बहुत बढ़ जाता अतएव ऐसा करना संभव न था। मूल पाठ के स्थिर करने मे जिन स्थलो पर केवल व्यक्तिगत निश्चय से काम लिया गया है उन के पाठातर प्रायः दिए गए हैं क्योंकि इन के विषय में मतभेद हो सकता है। इसी प्रकार अर्थांतर वाले पाठातर भी अनिवार्य रूप से संगृहीत है। प्राय: अशुद्ध पाठ पाठांतरों मे नहीं है किंतु जहाँ मूल पाठ का अर्थ अनिश्चित अथवा अज्ञात है वहाँ शुद्ध-अशुद्ध का विचार न कर के प्राप्त सभी पाठांतर दे दिए गए हैं।

जिस पाठ को किसी दूसरी प्रति ने बिलकुल छोड़ दिया है उस की सूचना × चिह्न द्वारा दी गई है। जिन पाठातरो के बाद प्रश्नसूचक चिह्न लगा हुआ है वे लिपि की गड़बड़ी के कारण निश्चित रूप से नही पढे जा सके हैं।

नंददास की रचना में कुछ पंक्तियाँ समान रूप से दो ग्रंथों मे मिलती हैं, जैसे 'रूपमंजरी' की पंक्ति १०८, १०९, ११० तथा ५४०, ५४१, ५४७ 'रसमंजरी' में भी क्रमशः पंक्ति ५८, ५९, ६० तथा ४२, ४३, ४० पर इसी रूप से मिलती हैं। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। पोथियों के देखने से यही अनुमान होता है कि स्वयं कवि ने इन्हें इस रूप में रक्खा है। फलतः इस संबंध में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया।

काव्य-समीक्षा

काव्यकार को अपनी कला का प्रासाद निर्माण करने मे सर्वप्रथम वर्ण्यवस्तु को चुनना पडता है। इस कार्य मे वह प्रायः अपनी पूर्ववर्ती तथा समसामयिक रचनाओ का थोड़ा-बहुत अवलंब अवश्य ग्रहण करता है। जिन विषयो को अपने उपयोग के लिए वह छाँटता है उन मे अपनी वैयक्तिक अभिरुचि, अपनी प्रतिभा तथा अपनी परिस्थिति के अनुकूल जो परिवर्तन आवश्यक होते है उन्हें कर लेता है। इस प्रकार से पुरानी बातों को नई रूपरेखा दे कर मानव-हृदय की जटिलताओ, उस की गहराई, उस के सुख-दुख तथा उत्थान-पतन आदि के मार्मिक चित्रों से वह काव्यानंद की धारा प्रवाहित कर देता है। अतएव नंददास की कृतियों की वर्ण्यवस्तु तथा उस के प्रधान आधारों से कुछ परिचय प्राप्त कर लेने से कवि के दृष्टिकोण को समझने मे सुगमता होगी।

भगवान् कृष्ण के परम भक्त होने के नाते नंददास की कोई भी रचना ऐसी नही है जो किसी न किसी रूप मे कृष्ण से संबद्ध न हो। 'रूपमंजरी' मे धर्मधीर नाम के किसी राजा की कन्या का चरित्र वर्णित है। विवाह-योग्य होने पर रूपमजरी के पिता-माता ने किसी ब्राह्मण को उस के योग्य वर खोजने का भार सौपा। लोभी तथा दुर्बुद्धि ब्राह्मण ने उस का विवाह किसी क्रूर तथा कुरूप राजपुत्र से करा दिया। रूपमंजरी के स्वजन, विशेष रूप से उस की सखी इंदुमती, इस घटना से अत्यंत दुखित हुई। उस ने 'उपपति-रस' द्वारा अपनी सखी के अपार सौंदर्य को सार्थक बनाने का यत्न किया। उस के व्रत आदि के फलस्वरूप रूपमंजरी को कृष्ण ने दर्शन दिए। इस के पश्चात् कवि ने षट् ऋतुओ तथा उन से पीड़ित रूपमजरी की विरहावस्था का वर्णन कर के अंत में स्वप्नावस्था में कृष्ण-प्राप्ति करा दी है। इदुमती भी अपनी सखी की सेवा करते हुए मुक्त हो गई। इस आख्यान मे कवि ने पात्रों के व्यक्तित्व का विकास नही किया

है जिस से यह निश्चित नहीं हो पाता है कि उस के प्रधान पात्र रूपमंजरी तथा इंदुमती ऐतिहासिक व्यक्ति थे अथवा नहीं। हम पहले देख चुके हैं कि एक बहिरंग साक्ष्य द्वारा 'ग्वालियर की बेटी' रूपमंजरी से कवि की मैत्री होने का उल्लेख मिलता है। कदाचित् रूपमंजरी का वैवाहिक जीवन असफल था और वह अंत में कृष्ण-भक्त हो गई थी। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उस से घनिष्टता होने के कारण कवि ने उस के वृत्त को प्रकट न किया हो।

'विरहमंजरी' बारहमासे की शैली पर लिखी हुई रचना है। इस में विरहाकुल ब्रजबाला चंद को दूत बना कर कृष्ण के पास द्वारका से शीघ्र वापस आने का संदेश भेजती है।

'रसमंजरी' भाषा-साहित्य में कदाचित् नायिका-भेद का पहला ग्रंथ है। स्वयं कवि ने 'रसमंजरी' नामक किसी ग्रंथ के अनुसरण करने का उल्लेख किया है। संस्कृत कवि भानुदत्त मिश्र विरचित 'रसमंजरी' से नंददास की 'रसमंजरी' की तुलना करने पर दोनों में बहुत अधिक साम्य मिलता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का अभिप्राय भानुदत्त के ग्रंथ का अनुसरण करने से ही है। भानुदत्त ने विभिन्न नायिकाओं के लक्षण गद्य में दिए हैं और उन के उदाहरण श्लोकों में। लक्षणों की समीचीनता पर भी उन्हों ने शास्त्रीय ढंग से विवेचन किया है। नंददास ने इन विस्तारों को एकदम छोड़ दिया है। उन्हों ने प्राय. उदाहरणों को ही लिया है। यहाँ दोनों कवियों के ग्रंथों से 'सुरतिगोपना परकीया' का एक उदाहरण तुलनार्थ दिया जाता है जिस से यह ज्ञात होता है कि नंददास का उद्देश्य भानुदत्त के ग्रंथ को रूपांतरित करना ही था—

श्वश्रूः क्रुध्यतु, विद्विषन्तु सुहृदो, निन्दन्तु वा यातरः।
तस्मिन् किन्तु न मन्दिरे सखि ! पुनः स्वापो विधेयो मया॥

आखोराक्रमणाय कोणकुहरादुत्फालमातन्वती
मार्जारी नखरैः खरैः कृतवती, कां कां न मे दुर्दशाम्[१]॥
कहै सखी सौं उहि गृह अंतर, अव तैं हौं सोऊँ न सुतंतर।
सास लरौ, धैया किन लरौ, दैया जो भावै सो करौ।
आखु धरन हित दुष्ट मजारी, मो पै उछरि परी दइमारी।
दै गई तीछन नख दुखदाई, कासौं कहौं दरद सो माई।
इहि छल छतन छिपावै जोई, परकिय सुरतिगोपना सोई[२]।

'मानमंजरी नाममाला' की रचना 'अमरकोश' के आधार पर हुई है। इस मे संस्कृत के कुछ शब्दो के पर्यायवाची शब्दो को दोहो मे संगृहीत किया गया है किंतु कवि ने अपने विषय का प्रतिपादन अत्यत रोचक तथा मौलिक ढँग से किया है। उस ने शब्दों के पर्यायवाचियों के साथ साथ मानिनी राधा के मनाने की कथा का कुछ विस्तृत वर्णन दे कर अंत मे राधा और कृष्ण का मिलन करा दिया है। इस प्रसग की अवतारणा से कोष ऐसे नीरस विषय मे भी वहुत सरसता आ गई है।

'अनेकार्थमजरी' मे अनेकार्थी शब्दो पर दोहे संगृहीत है। 'मान-मजरी' के समान इस ग्रंथ मे किसी प्रकार की कथा तो नहीं है किंतु इस के दोहो मे भगवद्भजन के रूप मे 'कृष्न', 'गोविद'. 'हरि' आदि शब्दों का समावेश अवश्य किया गया है।

'स्यामसगाई' की कथावस्तु अत्यंत सरल है। यशोदा ने राधा के साथ कृष्ण के विवाह का प्रस्ताव कीर्त्ति के पास भेजा। कीर्त्ति ने नटखट कृष्ण से अपनी भोली कन्या का विवाह करना ठीक न समझा। इस प्रस्ताव की अस्वीकृति से माँ को दुखी देख कृष्ण अपने मनमोहक

---

[१] भानुदत्त मिश्र: 'रसमंजरी', पृ० ५३ (प्रकाशक, श्रीकृष्ण निबंधभवन, काशी, १९२९)

[२] 'रसमंजरी', पंक्ति ११०–११४

वेष में बरसाने के बाग में जा बैठे। अपनी सखियों के साथ राधा कृष्ण को देखने आईं। प्रथम दर्शन होते ही राधा मूर्च्छित हो जाती हैं। कुछ सजगता आने पर सखियों ने उसे कृष्ण-प्राप्ति की एक युक्ति बतलाई। उन्हों ने उसे यह सिखलाया कि माँ के इस अवस्था का कारण पूछने पर तुम यही कहना कि मुझे साँप ने काट लिया है। घर जाने पर माँ कन्या की दशा देख कर अत्यंत व्याकुल हुई। राधा की एक सखी को भेज कर कृष्ण बुलाए गए। उन के दर्शन मात्र से राधा की मूर्च्छा जाती रही। कीर्ति ने प्रसन्नतापूर्वक राधा-कृष्ण की सगाई निश्चित कर दी। संभवतः इस आख्यानक को लिखते समय कवि 'सूरसागर' से प्रभावित हुआ है क्योंकि राधा को साँप काटने तथा कृष्ण के बुलाए जाने का वर्णन सूरदास ने भी किया है।

'भँवरगीत' की वस्तु का मूलाधार 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय ४६ व ४७ है किंतु दोनों वर्णनों की तुलना करने पर महत्त्वपूर्ण अंतर पाए जाते हैं। 'भागवत' मे उद्धव नंद-यशोदा और साथ ही गोपियों के कृष्ण-विरह-जनित संताप को शांत करने जाते हैं। संध्या समय गोकुल पहुँचने पर उन की भेंट पहले नंद जी से होती है। नंद जी कृष्ण के अद्भुत कृत्यों का स्मरण कर प्रेम-विभोर हो जाते हैं। उद्धव उन्हें यह उपदेश दे कर सांत्वना देते हैं कि कृष्ण 'अजन्मा', 'अकर्मा' है, वे 'प्रयोजनवश मायामय मनुष्य रूप मे अवतीर्ण' होते हैं। उद्धव और नंद की बातचीत होते होते रात बीत जाती है। दूसरे दिन सूर्योदय के प्रकाश मे गोपियों ने नंद के द्वार पर सुवर्णमय रथ खड़ा हुआ देखा। उस के बाद ही उन्हे उद्धव के आने की सूचना मिली किंतु नंददास के 'भँवरगीत' में उद्धव के आने का प्रयोजन केवल गोपियों को समझाना है। उस मे उद्धव-नंद की भेंट का उल्लेख तक नहीं है। उस की प्रथम पंक्ति है—'ऊधो को उपदेस सुनौ ब्रजनागरी'। 'भागवत' मे गोपियाँ उद्धव से मिलने पर कृष्ण की स्वार्थ मैत्री पर थोड़ा आक्षेप करती है और शीघ्र ही भ्रमर का प्रवेश हो

जाता है। 'भँवरगीत' मे कुशल-प्रश्न के पश्चात् निर्गुण-सगुण पर विवाद प्रारभ हो जाता है और २२ छंदो तक यह विवाद चलता है (छंद ७ से २८ तक)। इस तर्क-वितर्क की कोई चर्चा 'भागवत' मे नही है। भ्रमर को लक्ष्य कर 'भागवत' मे जो उपालंभ कराए गए है उन्हे नंददास ने प्रचुर मात्रा मे ग्रहण किया है किंतु उन्हों ने उन के क्रम मे कुछ अंतर कर दिया है। 'भँवरगीत' मे ज्ञान और भक्ति की वात समाप्त होने पर अकस्मात् गोपियों के सन्मुख कृष्ण का स्वरूप आ जाता है और वे उन की कुटिलता पर अनेक प्रेम-पूर्ण आक्षेप करती है (छंद २९ से ४२ तक)। इस के बाद कवि ने ४५वे छद मे भ्रमर का प्रवेश कराया है और उस को लक्ष्य करते हुए उपालंभ कराए है। 'भागवत' मे भी गोपियाँ विष्णु के विभिन्न अवतारों की क्रूरता पर आक्षेप करती है परतु वह भ्रमरोपालंभ के अंत मे वर्णित है और वह भी सूक्ष्म रूप मे। 'भागवत' मे उद्धव कई महीने ठहर कर गोपियो को पूर्ण रूप से संतुष्ट कर देते है, 'भँवरगीत' मे गोपियों की अटल प्रेम-भावना के सामने वे सिर झुका देते है और उन की प्रेम-महिमा की प्रशंसा करते हुए कृष्ण के पास वापस जाते है।

रुक्मिणी परिणय की कथा का सूत्रपात 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय ५२ के मध्य से होता है। जव रुक्मिणी के हठी भाई रुक्मी ने शिशुपाल के साथ उस के विवाह का समस्त आयोजन कर दिया तो वह अत्यंत चिंतित हुई। उस ने एक विश्वस्त ब्राह्मण के हाथ कृष्ण को पत्र भेजा[१]। ब्राह्मण के द्वारकापुरी पहुँचने पर कृष्ण पहले तो संतोष, धर्म तथा सदाचार आदि के पालन का उपदेश करते हैं, पुनः उस के आने का प्रयोजन जान कर उस से रुक्मिणी का पत्र पढ़वाते है[२]। तत्पश्चात्

---

[१] पं० रूपनारायण पाण्डेय: 'श्रीमद्भागवतभाषा' (निर्णयसागर प्रेस, बंबई), १०–५२–२६

[२] वही, १०–५२–३६

से कुंडिनपुर के लिए चल देते हैं। इधर संतान-वत्सल राजा भीष्मक अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर अतिथियों की अभ्यर्थना का समस्त प्रबंध संपादित करते हैं। रुक्मिणी कृष्ण के शीघ्र न आने से व्यग्र हो उठती है। ब्राह्मण जब वापस आता है तो उस के प्रफुल्लित मुख से ही वह कार्य-सिद्धि की सूचना पा जाती है। कुछ समय के उपरांत सैनिकों से घिरी रुक्मिणी देवी-पूजन के लिए जाती है। विधिवत् पूजा करने के बाद जब वे मंदिर से बाहर आती हैं तो कृष्ण उन्हें रथ पर चढ़ा कर चल देते हैं। अनेक शस्त्रधारी योद्धा कृष्ण का पीछा करते हैं पर वे सभी पराजित हो कर निराश लौटते हैं। रुक्मी को इस से संतोष न हुआ। वह स्वयं कृष्ण से युद्ध करने जाता है। कृष्ण ने उसे परास्त किया और कुरूप कर के रथ के पीछे बांध दिया। भाई की इस दुर्गति से दुखी रुक्मिणी के अनुरोध से दयालु बलदेव जी रुक्मी को बंधन-मुक्त कर देते हैं और रुक्मिणी को अपने क्रूर भाई के प्रति सहानुभूति प्रकट करने पर तिरस्कृत करते हैं। अंत में द्वारका पहुँच कर कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह हो जाता है।

'रुक्मिनी मंगल' की कथा का मूल ढाँचा 'भागवत' की इस कथा पर ही अवलंबित है किंतु विस्तारों में नंददास ने अनेक काव्योपयोगी परिवर्तन कर दिए हैं। उन्हों ने प्रारंभ में रुक्मिणी की विरहावस्था का वर्णन विस्तार के साथ किया है। रुक्मिणी का पत्रवाहक द्वारकापुरी की भव्य अट्टालिकाओं तथा स्वर्णीय लताओं और कुंजों को देखता हुआ कृष्ण के पास पहुँचता है। यहाँ उसे कृष्ण धर्म तथा सदाचार का व्याख्यान नहीं देते। वे उसे रुक्मिणी का पत्र पढ़ने को देते हैं। रुक्मिणी अपने पत्र में अपने दृढ़ प्रेम तथा अपनी विवशता का ही उल्लेख करती है। 'भागवत' की भाँति अपने हरण की युक्ति वे नहीं बतलाती हैं। उसे तो वे कृष्ण के ऊपर छोड़ देती है। 'भागवत' में वर्णित विवाहोपलक्ष्य राजा भीष्मक के प्रबंधों को नंददास बिलकुल छोड़ जाते हैं। उन के स्थान पर वे कृष्ण की रूपमाधुरी का पुरवासियों पर जो प्रभाव पड़ा उस का वर्णन करते हैं। देवी-पूजन के

बाद कृष्ण जब रुक्मिणी का हरण कर चल देते है तो जरासंध-आदि राजा उन का पीछा करते हैं। इन राजाओ तथा यदु-सेना के साथ युद्ध का जो वर्णन 'भागवत' मे है उस का संकेतमात्र कर के कवि ग्रंथ समाप्त कर देता है। कृष्ण का रुक्मिणी के सामने ही उस के भाई के वध मे उद्यत होना तथा भाई के अपमानित होने से रुक्मिणी के क्षुब्ध होने पर बलदेव का उसे तिरस्कृत करना और ज्ञानोपदेश देना काव्य की दृष्टि से अत्यंत अस्वाभाविक बाते थी इसी से नंददास ने इन्हें छोड़ दिया है।

'रासपंचाध्यायी' के पाँच अध्याय 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय २९-३३ पर आधारित है। प्रथम अध्याय का प्रारंभ मुरली के मधुर आह्वान से होता है। अपने साथ विहार करती हुई गोपियो के मान उत्पन्न होने के कारण कृष्ण अंतर्ध्यान हो जाते है और इसी स्थल पर अध्याय की समाप्ति होती है। नंददास ने इस अध्याय को बहुत परिवर्द्धित कर दिया है। शुकदेव जी का मार्मिक शिख-नख-वर्णन, 'श्रीमद्भागवत' तथा 'पंचाध्यायी' की महत्ता, वृंदावन का रमणीय चित्रण आदि उल्लेखनीय परिवर्द्धन इस के प्रारभ मे किए गए है। इस अध्याय के समाप्त होते होते कामदेव भी आता है। कृष्ण उस के मन को मथ देते है जिस से वह मूर्च्छित हो कर गिर पडता है और रति उसे ले कर भाग जाती है। दूसरे अध्याय मे गोपियाँ लताओ तथा वृक्षो से कृष्ण का पता पूछती फिरती है और उन्मत्तो की भाँति अपने को कृष्ण समझ कर उन की विभिन्न लीलाओं का अनुकरण करती हैं। तृतीय अध्याय मे विरहाकुल गोपियों का, चतुर्थ मे गोपी-कृष्ण-मिलन का तथा पंचम मे रास और जल-क्रीड़ा का आमोद-पूर्ण वर्णन है। इन अध्यायों मे कवि ने 'भागवत' की कथा का ही भावानुसरण किया है यद्यपि व्यक्तिगत रुचि के कारण कुछ प्रसगो के वर्णन घट-बढ़ गए है। द्वितीय अध्याय मे गोपियाँ कृष्ण की लीलाओ का जो अनुकरण करती हैं वह नंददास की कृति मे संक्षिप्त रूप मे ही है किंतु पंचम अध्याय मे कवि ने रास-विहार तथा जल-क्रीड़ा का जो

वर्णन किया है वह मूल में वहीं अधिक विस्तृत रूप में है।

'सिद्धांत पंचाध्यायी' 'रासपंचाध्यायी' का सहायक ग्रंथ सा प्रतीत होता है। इस ग्रंथ में 'रासपंचाध्यायी' की कथा को कवि एक प्रकार से फिर दोहराता है। विषय साम्य होने के कारण स्वभावतः इस के अनेक स्थल 'रासपंचाध्यायी' से मिलते-जुलते हैं। इस में कृष्ण के देवत्व पर विशेष बल देते हुए कवि रास-विहार की अलौकिक महिमा प्रदर्शित करता है। अपने पाठकों को वह कई बार यह चेतावनी देता है कि रास की कथा में सामान्य शृंगार के भावों का आरोप करना भूल है। इस ग्रंथ को पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि 'रासपंचाध्यायी' की रचना होने के बाद शीघ्र ही उस की आलोचना भी प्रारंभ हो गई होगी और तभी यह ग्रंथ लिख कर कवि ने अपने पक्ष का समर्थन करने की आवश्यकता समझी होगी।

'दशम स्कंध' में 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के प्रथम २९ अध्यायों का उल्था है अतः इस का नाम कुछ भ्रामक अवश्य है। 'भागवत' में इस स्कंध में ९० अध्याय हैं और पूर्वार्द्ध की कथा अध्याय ४९ के बाद समाप्त होती है। फलतः इसे 'दशम स्कंध पूर्वार्द्ध' भी नहीं कहा जा सकता है। इस में भगवान् कृष्ण के जन्म से ले कर रास-विहार की प्रारंभिक लीला तक की कथा मिलती है। इस कथा का क्रम मूल के अनुरूप ही है। यद्यपि कुछ स्थलों पर कवि ने मूल कथा का शब्दानुवाद भी किया है तथापि साधारणतया वह भावानुसरण से ही संतोष करता है। 'श्रीमद्भागवत' से तुलना करने पर इस में चार प्रकार के अंतर मिलते हैं—

(१) 'भागवत' के जिन अंशों में शंकराचार्य द्वारा प्रवर्त्तित अविद्या तथा माया के सिद्धांतों का प्रतिपादन अथवा समर्थन होता है उन्हें कवि ने बिलकुल छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ 'भागवत' के अध्याय ४ में जब योग-माया कंस को यह सूचना दे कर अंतर्हित हो जाती है कि उस का मारने वाला कहीं अन्यत्र पैदा हो चुका है तब वह आश्चर्यान्वित हो कर अपने

दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप करने लगता है। वह कहता है कि अब मुझे ज्ञात हुआ कि देवता भी झूठ बोलते हैं[1]। तदनंतर वह देवकी और वसुदेव को इस प्रकार समझाता है—

"हे महाभागो तुम दोनो पुत्रों के लिये शोक न करो। उन्होंने जैसे कर्म किये थे वैसा ही फल उनको भोगना पड़ा। सब प्राणी दैव के वशवर्ती हैं, अतएव वे सर्वदा एकत्र नहीं रह सकते। जैसे मिट्टी से घट आदि उत्पन्न होते है और नष्ट हो जाते हैं, पर मिट्टी वैसी ही बनी रहती है, उसी प्रकार देहादि की उत्पत्ति और नाश होता है; परन्तु आत्मा अविकृत ही रहता है। जो लोग यथार्थ रूप से इस तत्त्व को नहीं जानते उन्हीं को देहादि असत् पदार्थो में आत्मबुद्धि होती है और इसी भ्रातबुद्धि से भेद-ज्ञान उत्पन्न होता है[2]....।"

इस समस्त प्रसंग को कवि ने छोड दिया है क्योकि वल्लभ सप्रदाय मे इस प्रकार की विचारावली का पूर्ण विरोध किया गया है।

(२) 'भागवत' के कुछ प्रसंगों को कवि ने संभवतः अनावश्यक विस्तार-भय के कारण भी नही ग्रहण किया है। तृतीय अध्याय में कृष्ण देवकी से उस के पूर्व जन्म की वह कथा कहते है जिस में उन्हों ने उस के तप से प्रसन्न हो कर उस का पुत्र होना स्वीकार किया था[3]। 'दशम स्कंध' के तृतीय अध्याय मे वह कथा नही है।

(३) 'दशम स्कंध (पूर्वार्द्ध)' के संपादक श्री कर्मचन्द गुग्गलानी ने उक्त ग्रंथ की भूमिका मे यह बतलाया है कि नंददास ने अपने ग्रंथ में 'श्रीमद्भागवत' के टीकाकारों के कुछ भावों का भी समावेश कर लिया

---

[1] दे० 'दशम स्कंध', अध्याय ४, पंक्ति २४ तथा 'श्रीमद्भागवतभाषा १०-४-१७

[2] 'श्रीमद्भागवतभाषा', १०—४—१८-२०.

[3] वही, १०—३—३२-४५.

है। उन के अनुसार 'दशम स्कंध' में श्रीधरस्वामी की 'भावार्थदीपिका', श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत 'वैष्णवतोषिणी' और श्रीमद्वल्लभाचार्य कृत 'सुबोधिनी' में भी कवि ने सहायता ली है। नंददास अपने ग्रंथ को पुष्टि-मार्गीय तथा अन्य संप्रदायों में समादृत कराना चाहते थे इसी से उन्हों ने इन आचार्यों के भावों को अपनाया है। यह बतलाया गया है कि वल्लभा-चार्य जी के अनुसार 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध में 'निरोध' का वर्णन है तथा श्रीधरस्वामी के मत में उस में 'आश्रय' का वर्णन है। 'निरोध' के शब्दार्थ में भी दोनों आचार्यों में मतभेद है। नंददास ने दोनों के मतों का समावेश कर लिया है[1]।

(८) कतिपय परिवर्द्धन 'श्रीमद्भागवत' के वर्णनों को अधिक पूर्ण तथा रोचक बनाने के विचार से भी किए गए हैं जैसे प्रथम अध्याय में मथुरा की प्रशंसा में किंचित विस्तार कर दिया गया है[2]। इसी भांति कुछ अलंकारिक उक्तियां भी यत्र तत्र जोड़ दी गई हैं। ये परिवर्तन सामान्य ही हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के मूल पाठ तथा परिशिष्ट १ (ग) में कवि कृत फुटकर पद संगृहीत हैं। इन में अधिकांश कृष्ण-कथा से संबद्ध विभिन्न अवसरों तथा उत्सवों पर गाए जाने वाले पद हैं। इन में होली, वसंत, झूला आदि आनंदोत्सवों का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से मिलता है। गुरु तथा यमुना की स्तुति में भी कुछ गीतात्मक रचनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

नंददास की रचनाओं की वर्ण्यवस्तु का जो स्थूल परिचय ऊपर दिया गया है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन के काव्य का प्रधान लक्ष्य गोपी-कृष्ण के प्रेम को अंकित करना ही था। उन के भक्त-हृदय के काव्याकाश का क्षितिज गोपियों के निःसीम तथा उमड़ते हुए प्रेमसागर में विलीन

'दशम स्कंध', अध्याय १, पंक्ति ३५-४८

'दशम स्कंध', अध्याय १, पंक्ति १२०-१२५

हो जाता है। कवि यह स्पष्टतया स्वीकार करता है कि गोपियों का प्रारंभिक प्रेम वासनामय है[1]—उस के मूल मे मानव-हृदय की स्वाभाविक पाशविक वृत्तियाँ अंतर्हित है। वह कृष्ण के ईश्वरत्व से नही वरन् उन की अनुपमेय रूपमाधुरी से उन्मत्त होने पर प्रादुर्भूत होता है। परंतु ब्रह्मादि से ले कर कीट पर्यंत मे अनुप्रवृष्ट समस्त सृष्टि का सृजन तथा पालन करने वाले परम पुरुप कृष्णचंद्र की ओर उन्मुख होते ही वासनाओं का विष जाता रहता है। उन में मनुष्य को पीड़ित करने की शक्ति ही नही रह जाती है। यही नही, असत् वृत्तियो के साथ ही सत् वृत्तियाँ भी भस्मीभूत हो जाती है। मुरली की मादक पुकार सुनने पर भी जो गोपियाँ गृहत्याग कर कृष्ण से न मिल सकी उन्हो ने जिस अपार दु:ख का अनुभव किया उस के द्वारा करोडो वर्षो तक नरक-यातना भुगताने वाले पापो को एक क्षण मे भुगत डाला। पुन: प्रियतम की छवि की कल्पना कर के जब उन्होंने उन का मानसिक परिरंभन किया तो उन्हे उन अनंत स्वर्ग-सुखों का अनुभव हुआ जिस के द्वारा उन के समस्त पूर्वसंचित शुभ कर्मो का पुण्य भी विनष्ट हो गया—

परम दुसह श्रीकृष्न-बिरह-दुख व्याप्यौ जिन मैं।
कोटि बरस लगि नरक-भोग-अघ भुगते छिन मैं॥
पुनि रंचक धरि ध्यान पियहि परिरंभ दियौ जब।
कोटि स्वर्ग-सुख भुगति, छीन कीने मंगल सब[2]॥

इस रीति से पुण्य तथा पाप दोनो से रहित विकारहीन आत्माएँ परम आत्मा कृष्ण से मिल कर मधुर रस का अखंड अनुभव करती है। गोपी-कृष्ण का प्रेम प्रेम ही नही है, वह 'परम प्रेम' है। गोपियाँ यदि लोकलाज तथा सांसारिक बंधनों की सुदृढ़ शृंखलाओ को तोड़ कर कृष्ण-

---

[1] 'सिद्धांत पंचाध्यायी', पंक्ति २१७-२१८

[2] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति १२७-१३०

मिलन के हेतु दौड़ पड़ती हैं तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भगवान् के परम प्रेम के सामने कोई विघ्न-बाधा टिक ही नहीं सकती। इस प्रेम की विशेषता साधन में न हो कर साध्य में परिलक्षित होती है। श्रुतियों द्वारा प्रवर्तित कर्मकांड की नीरस क्रियाओं का पालन करने वाला व्यक्ति जिस समय ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है क्या तब भी वह उन्हीं अज्ञानमयी क्रियाओं की ओर दृष्टिपात करता है? स्रुवा आदि यज्ञ-विधियो के संपादन की वस्तुओं का महत्त्व यज्ञ करने के समय तक ही सीमित है। यज्ञ-कर्म करने के फलस्वरूप जब स्वर्ग-प्राप्ति हो जाती है तब इन वस्तुओं की ओर कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता—

अरज्या, सरवा, स्रुवा, जग्य-साधन अविसेखैं।
सरग जाइ, सुख पाइ, बहुरि को तिन तन देखैं[1]॥

कहा जाता है कि साम्प्रदायिक सिद्धांतो के अनुसार गोपी-कृष्ण का प्रेम स्वकीया प्रेम ही है क्योंकि गोपियाँ कृष्ण की विवाहित स्त्रियाँ थी। पुष्टिमार्गीय आचार्यों का इस विषय में जो भी मत हो, पुष्टिमार्गीय कवियो की रचनाओं में इस बात को नहीं स्वीकृत किया गया है। नददास ने एक स्थल पर स्पष्ट रूप से कहा है कि परकीया प्रेम ही प्रेम की चरम सीमा है—

रस में जो उपपति-रस आही। रस की अवधि कहत कवि ताही[2]।

गोपियों के सामूहिक प्रेम के अतिरिक्त राधा तथा रुक्मिणी के वैयक्तिक प्रेम का भी कवि ने चित्रण किया है। जीवन की साधारण परिस्थितियो के अधिक निकट होने के कारण इस प्रेम की प्रभावोत्पादकता भिन्न कोटि की है। इन में राधा और रुक्मिणी दोनो ही अविवाहित कन्याएँ है। दोनो के एकमात्र लक्ष्य कृष्ण है। दोनों माता-पिता के अनुशासन में है और

---

[1] 'सिद्धांत पंचाध्यायी', पंक्ति २२३-२२४

[2] 'रूपमंजरी', पंक्ति १६६

फलस्वरूप सासारिक बंधनों के भीतर ही अपने को सीमित रखती हैं। इन सीमाओं के भीतर जिस प्रेम का प्रस्फुटन होता है वह असाधारण श्रेणी का नही है। इसी से साधारण मनुष्यो को इसे मनोगत करने के लिए किसी व्याख्या की आवश्यकता नही होती है। परंतु नंददास ने इसे अंकित करने के लिए जिन आख्यानो को चुना है उन से इस की थोड़ी सी झलक मात्र दिखलाई पड़ती है। 'स्यामसगाई' तथा 'रुक्मिनी मंगल', जैसा कि नामों से ही प्रकट होता है, राधा-कृष्ण की सगाई तथा कृष्ण-रुक्मिणी परिणय के साथ ही समाप्त हो जाते है। कवि के फुटकर पदों में दांपत्य रति की कुछ झाँकियाँ अवश्य देखने को मिलती है किंतु वे संख्या में अधिक नही है। कदाचित् गोपी-कृष्ण के प्रेम के सामने कवि इस प्रेम को अधिक महत्त्व नही देता था।

अध्ययन के सुभीते के विचार से शृंगार रस को दो भागों में विभक्त किया जाता है—संयोग तथा वियोग। अन्य कवियों के समान ही नंददास ने भी संयोग शृंगार का उतना विशद वर्णन नही किया है जितना वियोग का। 'रूपमंजरी', 'विरहमंजरी', 'भँवरगीत', 'रुक्मिनी मंगल', 'रास-पंचाध्यायी' तथा कुछ फुटकर पदों में विप्रलभ शृंगार के गभीर विश्लेषणों की छटा प्रदर्शित की गई है। जैसा कि पहले कहा गया है नंददास का प्रेम प्रधानतया रूपासक्तिमूलक ही है अतएव कृष्ण की रूपमाधुरी का चित्रण कवि ने बड़े विस्तार के साथ किया है। उन के अपूर्व शरीर के जिस अंग पर दर्शक की दृष्टि पड़ जाती है वह वही फँस कर रह जाती है—

कोटि काम-लावन्य-धाम, अँग साँवरे पिय के।
जे जे जाकी दृष्टि परे, ते भये तित ही के॥
कोउ जो अलक छबि उरझे, अज हूँ नाहिन सुरझे।
ललित लटपटी पगिया, तकि तकि तहँ तहँ सुरझे[1]॥

---

[1] 'रुक्मिनी मंगल', पंक्ति १६९-१७२

इसी भाँति एक अंग से पीछा छुटा कर जब लोगों की दृष्टि दूसरे अंग पर पड़ती है तो वहाँ से भी उसे छुटकारा मिलना कठिन हो जाता है। जिस मकान के प्रत्येक स्थान में मनुष्य भरे पड़े हैं उस से चोर चोरी कर के कहाँ भाग कर जा सकता है। यदि एक स्थान से वह किसी प्रकार बच कर निकल भी आता है तो दूसरे स्थान पर पकड़ा जाता है। कृष्ण-छवि-सुधा को त्याग कर जाना भी असंभव है—

कोउ श्रौर तें श्रौर, अंग के लोभ-लुभारे।
भरे भवन के चोर भये, बदलत ही हारे[1] ॥

उस रूपमाधुर्य के स्मरणमात्र से गोपियाँ 'जड़ता' की अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। 'भँवरगीत' में एक स्थल पर कवि ने अत्यंत मार्मिक ढंग से इस बात को प्रदर्शित किया है। उद्धव जी का संदेश सुनने पर गोपियों का ध्यान उस संदेश के अभिप्राय की ओर नहीं आकृष्ट होता। उन के भावुक हृदय में उस संदेश के भेजने वाले कृष्ण के मनोमुग्धकारी रूप का स्मरण हो आता है और वे शिथिल हो कर भूमि पर गिर पड़ती हैं—

सुनि मोहन-संदेस, रूप सुमिरन ह्वै आयौ।
पुलकित आनन अलक, अंग आवेस जनायौ॥
विह्वल ह्वै धरनी परीं, ब्रजबनिता मुरझाइ।
दै जल-छींट प्रबोधहीं, ऊधौ बात बनाइ॥
सुनौ ब्रजवासिनी[2] ॥

गोपियों की अनन्यता इतनी बढ़ जाती है कि कृष्ण के बिना उन का जीना ही असंभव सा हो जाता है। जिस मछली के लिए जल ही जीवन है वह भला उस के बिना कैसे जी सकती है—

---

[1] 'रुक्मिनी मंगल', पंक्ति १८३-८४
[2] 'भँवरगीत', पंक्ति २६-३०

कोउ कहैं अहो दरस देत, फिरि लेत दुराई।
यह छलबिद्या कहो कौन पिय तुमहिं सिखाई॥
हम सब रस-आधीन हैं, तातें बोलत दीन।
जल बिन कहो कैसे जियैं, पराधीन जो मीन॥
विचारी रावरे[1]॥

इस परवशता को भूल जाने के निमित्त वे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करती हैं। कभी तो वे मथुरा का राजत्व पाने पर कृष्ण पर उपालभ करती है, कभी उन की निष्ठुरता की चर्चा करती है, कभी उद्धव जी का अपने वाक्प्रहारो द्वारा सत्कार करती है किंतु इन सब से भी उन की विरहाग्नि कम नही पडती और हठात् उन्हें पुनः अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो आता है और वे सब की सब एक साथ रो पड़ती है—

ता पाछे इक बार ही, रोईं सकल ब्रज-नारि।
हा करुनामय नाथ हो! केसव, कृष्न, मुरारि॥
फाटि हियरौ चल्यौ[2]॥

इस करुण क्रदन के सामने उद्धव जी को अपनी ज्ञान-गरिमा फीकी जँचने लगी। वे गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हुए वापस जाते है और कृष्ण के गुणो को भूल कर गोपियो की कीर्त्ति का गान करने लगते है।

विरह-व्यजना की यह गभीरता 'रासपंचाध्यायी', 'सिद्धात पंचाध्यायी', 'रुक्मिनी मंगल' आदि कवि की अन्य प्रौढ़ कृतियों से भी प्रकट होती है। निस्संदेह यह अवश्य कहा जा सकता है कि कवि के इन वर्णनों का श्रेय बहुत अशों मे 'श्रीमद्भागवत' को है किंतु उस की वर्ण्यवस्तु से परिचय प्राप्त करते समय हम देख चुके है कि कवि 'श्रीमद्भागवत' की सामग्री का

---

[1] 'भँवरगीत', पंक्ति १५६-१६०

[2] वही, पंक्ति २९८-३००

उल्था कर के ही संतुष्ट नहीं रहा है। उस ने अपने दृष्टिकोण से वस्तु में ही परिवर्तन नहीं किया, वरन् नए भावों का भी समावेश किया है। नीचे 'रुक्मिनी मंगल' से एक उदाहरण दिया जाता है।

द्वारका से अपने पत्रवाहक के शीघ्र वापस न आने से रुक्मिणी बहुत उद्विग्न हो उठी। कुछ समय बाद ब्राह्मण देवता आए। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार उन के प्रफुल्ल वदन को देख कर ही रुक्मिणी ने यह जान लिया कि उस का मनोरथ सिद्ध हो गया और कृष्ण शीघ्र ही आ रहे हैं। नंददास ने उस बात को दूसरा ही रूप दे दिया है। वे कहते हैं कि उस ब्राह्मण को देख कर रुक्मिणी के मुख से कोई शब्द ही न निकला। उसे यह संदेह होने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि ब्राह्मण महाशय यह कह बैठें कि कृष्ण न आवेंगे। इसी से वह सहसा कुछ पूछ न सकी—

> पूँछि न सकै मुख बात, दई यह कहा कहैगो।
> किधौं अमृत सौं सींचि, किधौं विष देह दहैगो[1] ॥

उस के प्राण उन का शरीर छोड़ कर द्विज के वचनों में जा लगे और जब उस ने कृष्ण के आने की सूचना दी तो वे मानो पुनः उस के शरीर में आ गए—

> निकसि प्रान तिय-तन तैं, द्विज के वचननि आये।
> जब कह्यौ 'श्री हरि आये', मनौं बहुरचौ फिरि आये[2] ॥

इस उदाहरण से हम यह देखते हैं कि अनिश्चय तथा तन्मयता की स्थितियों के समावेश से कवि ने इस प्रसंग का काव्योत्कर्ष बढ़ा दिया है।

विरह के भेदों के संबंध में भी नंददास के विचार उल्लेखनीय हैं। उन के अनुसार विरह के चार भेद होते हैं। वे अपने मित्र से कहते हैं—

---

[1] 'रुक्मिनी मंगल', पंक्ति १५६-६०

[2] वही, पंक्ति १६१-६२

प्रथम प्रतच्छ बिरह तू सुनि लै, तातें पुनि पलकांतर गुनि लै।
तीजौ बिरह बनांतर भये, चौथौ देसांतर कै गये[1]।

'प्रत्यक्ष' विरह मे प्रियतम के अंक पर विलास करती हुई राधा प्रेमावेश के कारण कुछ भ्रमित सी हो जाती है और उन्हे यह आशका होने लगती है कि कृष्ण से उन का विछोह हो गया है। प्रिय का मुख-कमल देखते समय पलकों के वार वार गिरने से जो व्याकुलता गोपियो को होती है उसे 'पलकातर' वियोग कहा गया है। वन अथवा किसी अन्य देश जाने से जो दु:ख उद्भूत होता है उसे 'बनातर' अथवा 'देसांतर' विरह की सज्ञा दी गई है।

व्यावहारिक दृष्टि से प्रथम दो भेदो की समीचीनता उपहासास्पद प्रतीत होती है किंतु यदि हम इन भेदो के देने के कारण पर विचार करेंगे तो वस्तुस्थिति का ठीक पता चलेगा। सांप्रदायिक विचारों के अनुसार कृष्ण का व्रज मे अखड निवास रहता है। स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि जव कृष्ण सर्वदा व्रज मे रहते है तो व्रजवासी गोपियो को उन का विरह ही कैसे होता है ? कदाचित् इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर देने के लिए ही उक्त चारो भेदो की कल्पना की गई है। नंददास के मित्र 'बिरहमंजरी' के प्रारंभ मे कवि से यही शंका करते है—

प्रश्न भई इक, सुंदर स्याम, सदा बसत वृंदाबन धाम।
याके बिरह जु उपज्यौ महा, कहौ नंद ! सो कारन कहा[2]॥

इस प्रश्न के उत्तर मे ही कवि विरह के उपर्युक्त चारो भेदो को गिनाता है। 'बिरहमंजरी' के वारहमासे की पृष्ठभूमि भी इसी प्रकार की विचार-शैली है। फलत: उस के वर्णन में यदि अधिक मर्मस्पर्शिता तथा हृदय-ग्राहिता न आ सकी हो तो कोई आश्चर्य की वात नही।

---

[1] 'बिरहमंजरी', पंक्ति १२-१३
[2] वही, पंक्ति ८-९

संयोग शृंगार के दो अनूठे चित्र 'रासपंचाध्यायी' में हैं। पहला प्रथम अध्याय में कृष्ण के अंतर्हित होने के पहले देखने को मिलता है। यह मिलन संक्षिप्त ही है। दूसरा चतुर्थ अध्याय में कृष्ण के प्रकट होने के बाद से प्रारम्भ हो कर पंचम अध्याय के अंत तक चलता है और यह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और पूर्ण है। कृष्ण-प्राप्ति के बाद जिस प्रेमोल्लास के साथ गोपियां उन से मिलती हैं उस की सीमाएँ निर्धारित करना असंभव है। उस का वर्णन कवि के शब्दों में ही इस प्रकार है—

पियहि निरखि तिय वृंद उठी सब इकहि बेर यौं ।
घट आये ज्यौं प्रान, बहुरि उकसत इंद्री ज्यौं ॥
महा छुधित कौं ज्यौं भोजन सौं प्रीति सुनी है ।
ताहू तैं सतगुनी, सहस किधौं कोटि गुनी है ॥
दौरि लपटि गईं ललित लाल, सुख कहत न आवै ।
मीन उछलि सर-पुलिन परे पुनि पानी पावैं ॥
कोउ चटपटी सौं कर लपटी, कोउ उर वर लपटी ।
कोउ गर लपटी कहति भले जू कान्हर कपटी' ॥

संयोग के चित्रण में कवि की लेखनी पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ चलती है। संयम अथवा नियंत्रण को वह जान बूझ कर हटा देता है क्योंकि उस के आदर्श के अनुसार आराध्य और आराधक के इस पुनीत मिलन में दोनों का पूर्ण एकीकरण बहुत आवश्यक है। परमानंद के इस अवसर को देख कर पत्थर भी पिघल उठा, समस्त सृष्टि की क्रियाशीलता जाती रही। सूर्य, चंद्र नक्षत्र-मंडल तथा पवन आदि सब जहाँ के तहाँ रह गए—

अद्भुत रस रह्यौ रास, गीत-धुनि सुनि मोहे मुनि ।
सिला सलिल ह्वै चली, सलिल ह्वै गयौ सिला पुनि ॥

[1] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति २६७-४०४

पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडु-मंडल सगरौ ।
पाछे रवि-रथ थक्यौ, चल्यौ नहिं आगे दगरौ[1] ॥

रास के अलौकिक क्षेत्र से हट कर कवि ने दांपत्य रति के संयोग पक्ष का जो यत्किंचित् विस्तार किया है उस की मनोहारिता अपना पृथक् अस्तित्व रखती है। निम्नांकित पद मे राधा-कृष्ण की पारस्परिक स्पर्द्धा का जिस सरलता से निपटारा कराया गया है वह द्रष्टव्य है—

बेसर कोन की अति नीकी ।
होड परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की ॥
न्याय पर्यो ललिता के आगें कोन सरस कोन फीकी ।
नंददास बिलग जिन मानों कछु एक सरस लली की[2] ॥

'वात्सल्य रति', 'शोक', 'क्रोध', 'भय', 'आश्चर्य' आदि भावों का भी थोडा-बहुत वर्णन कवि ने किया है किंतु सच तो यह है कि ये वर्णन प्रायः किसी परिस्थिति के अनुरोध से है। उन मे कवि की अंतरात्मा की पुकार की वह गूंज नही सुनाई पड़ती जिसे हम गोपी-कृष्ण के प्रेम के वर्णनों में सहज ही मे सुन पाते हैं। 'दशम स्कंध' की अघासुर, वकासुर, काली नाग, गोवर्द्धन-धारण आदि विभिन्न लीलाओं में 'भय', 'क्रोध', 'आश्चर्य' आदि के जिन भावो का प्रदर्शन किया गया है उस का बहुत कुछ श्रेय 'श्रीमद्भागवत' को ही है। इन क्षेत्रो में कवि की स्वतत्र उद्भावनाओं की जो अपेक्षाकृत कमी दिखलाई पड़ती है उसी से यह जान पड़ता है कि कृष्ण-कथा के साथ जुडी हुई होने के अनुरोध से ही कवि इन लीलाओ के वर्णन की ओर अग्रसर होता है।

पुष्टिमार्ग के प्रमुख कवियों का जो अध्ययन विद्वानों ने किया है उस के फलस्वरूप हम यह कह सकते हैं कि नंददास की काव्यकला में सांप्रदायिकता

---

[1] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ५३१-३४
[2] 'परिशिष्ट', पृष्ठ ४१६, पद १५०

की छाप सब से अधिक है। उन्हें हम वल्लभ संप्रदाय का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। संप्रदाय के रहस्यों को जिस सुथरे तथा ग्राह्य ढंग से उन्हों ने अपनी रचना में रखा वह अन्यत्र दुर्लभ है। स्वभावतः उन का यह प्रतिनिधित्व उन की काव्य-प्रतिभा को बराबर पीछे भी खींचता रहा जिस के फलस्वरूप कवि को भाव जगत के प्रत्येक कोने में स्वच्छंदता से विचरण करने का पूर्ण अवसर न मिल सका। पुरुष और स्त्री के सीमित क्षेत्र में ही भावों तथा उमंगों की जो नानारूपात्मक जटिल परिस्थितियाँ होती हैं उन में भी वह सब को ग्रहण नहीं कर सकता था क्योंकि गोपी-कृष्ण का जो सांप्रदायिक स्वरूप था वह बराबर उस के सामने रहता था।

फ्रांसीसी विद्वान् तासी ने अपने इतिहास में लिखा है कि नंददास ने जयदेव के 'गीतगोविंद' के अनुकरण पर रचना की है। कदाचित् उन का तात्पर्य यह था कि नंददास ने जयदेव की भाषा-शैली का अनुसरण किया। श्रुतिमधुर तथा कोमलकांतपदावली की सरस योजना नंददास की काव्यकला का वह आवश्यक गुण है जो तत्कालीन भाषा साहित्य के लिए नई बात थी। उन की भाषा का माधुर्य संस्कृत भाषा की सरल शब्दावली पर ही अवलंबित है। संस्कृत ग्रंथों के आधार पर रचना करने वाला व्यक्ति संस्कृत शब्दों की मनोहारिता से प्रभावित हुए बिना रह ही कैसे सकता था—

स्वामिनि क्वासि ! पिय महाबाहु ! इमि वदति अकेली।
महा विरह की धुनि सुनि, रोवत खग, मृग, बेली'॥

अनुप्रासादि शब्दालंकारों तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अर्थालंकारों से लदी हुई जिस आदर्श साहित्यिक भाषा की कवि ने सृष्टि की उस में सरस प्रवाह है, अद्भुत संगीत है और हृदय पर चोट करने की अपूर्व क्षमता है—

---

[1] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ३४५-४६

नूपुर, कंकन, किंकिन, करतल मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकहि सुर जुरली॥
मृदुल मुरज-टंकार, तार-झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की तार, भँवर गुंजार रली पुनि॥
तैसिय मृदु-पद-पटकनि, चटकनि कटतारनि की।
लटकनि, मटकनि, झलकनि, कल कुंडल हारनि की॥
साँवरे पिय-सँग निर्त्तत, चंचल ब्रज की बाला।
जनु घन-मंडल मंजुल, खेलति दामिनि-माला[1]॥

यह तो भाषा का वह रूप है जो कवि ने अथक परिश्रम द्वारा निर्मित किया है। इस के अतिरिक्त ब्रजभाषा के स्वाभाविक माधुर्य की भी कवि ने उपेक्षा नही की किंतु प्रवाह और प्रासादिकता का अनूठापन वहाँ भी विद्यमान है—

अरी बीर! चलि जाउ, कहौ यह बिनती मेरी।
जौ जीवैगी कुँवरि, बीर! मैं करिहौ तेरी॥
पाँइ लगौं, बिनती करौ, जग जस आवै तोहिं।
बेगि पठै नँदलाल कौं, जीव-दान दै मोहिं॥
रावरी सरन हौं[2]॥

इतिवृत्त के वर्णनों मे कवि ने प्रायः बोलचाल की भाषा का ही सहारा लिया है। भावावेश के अवसर पर जब वह इस भाषा का प्रयोग करता है तो निरलंकारिक होते हुए भी वह हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को व्यक्त करने मे अपूर्व सफलता प्राप्त करती है। 'पूर्वानुराग' के निम्नांकित पद में भाषा भावों को सुचारु रूप से व्यक्त ही नही करती वरन् उन में एक अजीब जान डाल देती है—

---

[1] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ४६५-४७२
[2] 'स्यामसगाई', पंक्ति ७६-८०

कृष्ण-नाम जब तें श्रवन सुन्यो री आली,
भूली री भवन हौं तौ बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चित हू न परै चैन,
तन की दसा कछु औरै भई री॥
जेतिक नेम-धर्म-व्रत कीने री मैं बहु विधि,
अंग अंग भई मैं तौ श्रवनमई री।
'नंददास' जाके श्रवन सुने ऐसी गति,
माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री'[1]॥

नंददास की भाषा में विदेशी शब्दावली का एक प्रकार से पूर्ण बहिष्कार मिलता है। फारसी तथा अरबी के बहुत थोड़े तद्भव शब्द प्रयत्नपूर्वक खोजने पर ही कवि की कृतियों से निकाले जा सकते हैं और वे भी ऐसे रूप में प्रयुक्त हुए हैं कि उन की व्युत्पत्ति से अपरिचित साधारण पाठक को उन के विदेशी होने का भान भी नहीं होता। विदेशी शब्दों के उदाहरण-स्वरूप 'अरदास' (फ़ा० अर्ज़दाश्त), 'चरबाई' (फा० चर्ब), 'गार' (अ० गार) तथा 'लाइक' (अ० लायक़) दिए जा सकते हैं।

नंददास ने प्रधानतया चौपई, दोहा और रोला छंदों का प्रयोग किया है। उन की पंच मंजरियों तथा 'दशम स्कंध' में चौपई तथा दोहा प्रयुक्त हुए हैं किंतु अन्य कवियों की भाँति इन दोनों छंदों को उन्हों ने किसी विशिष्ट क्रम के अनुसार नहीं रक्खा है। चौपइयों में स्वेच्छानुसार कहीं कहीं दोहे भी रख दिए गए हैं। कवि ने चौपई तथा चौपाई में भी कोई अंतर नहीं रक्खा है, यद्यपि छंद-शास्त्र के अनुसार पहले में १५ तथा दूसरे में १६ मात्राएँ होनी चाहिए। रोला छंद कवि को बहुत प्रिय था। इस छंद की उस ने जितनी सफलता के साथ रचना की है वैसी संभवतः भाषा साहित्य के किसी कवि ने नहीं की। दोहा, रोला तथा दस मात्रा की टेक के आयो-

---

[1] 'पदावली', पंक्ति २६८-२७५

निवेदन

नंददास के प्रस्तुत अध्ययन का प्रधान उद्देश्य उन के समस्त प्रामाणिक काव्य-ग्रंथो को वैज्ञानिक रीति से संपादित करना ही है। कवि के जीवन तथा उस के काव्य-कौशल का जो यत्किंचित् विस्तार ऊपर दिया गया है वह प्रासंगिक अध्ययन के रूप में है। कवि की कृतियो के संपादन-कार्य के सीमित क्षेत्र मे भी बहुत सी त्रुटियां रह गई है। प्राचीन साहित्यिक व्रजभाषा संबंधी जटिलताओं, अर्थ संबंधी गुत्थियों तथा क्षेपक आदि की अनेक समस्याओं का पूर्ण निराकरण कर लेना अत्यंत कठिन कार्य है। प्रस्तुत प्रयास मे इन मे से केवल कुछ का ही अंशतः अध्ययन किया जा सका है।

इस कार्य में सब से वडी कठिनाई हस्तलिखित प्रतियों के प्राप्त करने में हुई क्योंकि किसी समुचित व्यवस्था के अभाव में वे प्राय. देश के विभिन्न नगरों तथा ग्रामों मे बिखरी हुई मिलती है और इन सभी स्थानों में जा कर पोथियों के अध्ययन करने मे अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां है। फिर भी, यथासंभव ज्ञात महत्त्वपूर्ण प्रतियों के परीक्षण का प्रयत्न किया गया है। इस संबंध मे गवर्मेंट वैक्सीन डीपो पटवा डाँगर (नैनीताल) के अध्यक्ष राय साहब डा० भवानीशंकर याज्ञिक, एम० बी० बी० एस०, डी० पी० एच०, ने विशेष उल्लेखनीय सहायता प्रदान की है। याज्ञिक जी ने अपने स्वर्गीय पितृव्य पं० मयाशंकर जी याज्ञिक के संग्रह की अनेक हस्तलिखित प्रतियों को कई मास के लिए विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भेजने की कृपा की। कवि की कुछ कृतियों का संपादन तो इस सामग्री के आधार पर ही संभव हुआ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अधिकारियों ने सभा की अप्रकाशित सामग्री की परीक्षा करने मे लेखक को अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी। इस के अतिरिक्त बाबू ब्रजरत्नदास, प० जवाहरलाल चतुर्वेदी, श्री मुरारीलाल केडिया, बाबा वंसीदास, ठा० प्रतापसिंह, श्री जगदीश सिंह

गहलौत, श्री महावीर सिंह गहलौत आदि सज्जनों ने तथा भरतपुर राज्य पुस्तकालय, प्रतापगढ़ राज्य पुस्तकालय, श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली (उदयपुर), पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी, और स्थानीय भारती भवन पुस्तकालय, म्यूनिसिपल म्यूजियम एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों ने स्मरणीय सहायता दी है। लेखक इन सभी महानुभावों तथा संस्थाओं का आभारी है क्योंकि इन के सहयोग के बिना इस ग्रंथ को प्रस्तुत रूप में प्रकाशित करना संभव न था।

प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यापक श्री सतीशचद्र देव जी ने प्रस्तुत अध्ययन की रूपरेखाओ के निर्धारित करने में अपना बहुमूल्य समय दिया है जिस से लेखक को लाभ हुआ है। श्री रामप्रसाद नायक, एम० ए० तथा श्री पृथ्वीनाथ कुलश्रेष्ठ, 'कमल', बी० ए० ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रूफ देखने में विशेष सहायता दी है अतएव ग्रंथ-संपादक उन का भी कृतज्ञ है।

हिंदी विभाग
८ अगस्त, सन् १९४२

उमाशंकर शुक्ल

नंददास

रूपमंजरी

प्रथमहि प्रनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि।
रूप-उपावन, रूपनिधि, नित्य कहत कवि ताहि॥

परम प्रेम-पद्धति इक आही, 'नंद' जथामति बरनत ताही।
जाके सुनत-गुनत मन सरसै, सरस होइ रस-बस्तुहि परसै।
रस परसे बिन तत्व न जानै, अलि बिन कमलहि को पहिचानै।
पुनि प्रनऊँ परमातम जोई, घट-घट, बिघट पूरि रह्यौ सोई।
ज्यौं जल भरि बहु भाजन माहीं, इंदु एक सब ही मैं छाँहीं।
पै कछु मानसर ससि की झाँई, सो न छुद्र छिल्लर छबि पाई।
तरनि-किरन सब पाहन परसै, फटिक माँझ निज तेजहि दरसै।
स्वाति बूँद अहि-मुख बिष होई, कदली दल कपूर होइ सोई।
सुबन रूप सँग सोभा पावै, सो कुरूप ढिँग बदन दुरावै।
एकै पट अनेक रँग गहै, सु रँग रंग सँग अति छबि लहै।
पुनि जस पवन एक रस आही, बस्तु के मिलत भेद भयौ ताही।
रबि-कर परसि अगिनि जिहि होई, सो दरपन जग बिरलौ कोई।

जगमग-जगमग करहि नग, जौ जराइ सँग होइ।
काँच किरन कंचन खचे, भलौ न कहियै कोइ॥

ऐसे जो प्रभु के पंकज-पग, कबिन अनेक प्रकार कहे मग।
तिन मैं इह इक सूच्छम रहै, हौं तिहि बलि जो ईह चलि चहै।

जग मैं नाद अमृत मग जैसौ, रूप अमीकर मारग तैसौ।
गरल, अमृत, इक ठाँ करि राखै, भिन्न भिन्न करि विरलौ चाखै।
खीर-नीर निरवारि पियै जो, इहि मग प्रभु पदवी पावै सो।
दिष्टि अगोचर कमल जु होई, वास खोज परि पैयै सोई।
इंदुमती मतिमंद पै, और नाहि निवहंत।
नागर, नगधर, कुँवर-पद, इहि मग छ्यौ चहंत॥
रस-मय सरसुति के पाँ लागौ, अस अच्छर द्यौ यह वर मागौ।
सुंदर, कोमल, बचन अनूठे, कहत, सुनत, समुझत अति मीठे।
नाहिंन उघरे गूढ़ न ऐसै, मरहट देस वधू कुच जैसै।
पुनि कवि अपने मन मैं गुनै, मो कबित्त कोउ निरस न सुनै।
रस-बिहीन जौ अच्छर सुनही, ते अच्छर फिरि निज सिर धुनही।
बाला-स्मित, कटाच्छ, औ लाज, अँधरे वालम के किहि काज।
ज्यौ तिय सुरति समै सितकारा, निरफल जाहि वधिर भरतारा।
कवि-अच्छर अरु तरुनि-कटाछे, ये दोउ सु लगि, लगै हिय आछे।
जे हिय अच्छर रस नहि बिधे, ते हिय अर्जुन बान न छिधे।
कविन तेई पाहन सम माने, नहिंन पखान पखान वखाने।
इहि प्रसंग हौ जु कछु बखानौ, प्रभु तुम अपनौ जस कै मानौ।
तुव जस-रस जिहि कवित न होई, भीत चित्र सम चित्र है सोई।
हरि जस-रस जिहि कवित नहि, सुने कौन फल ताहि।
सठ कठपुतरि दुसंग दुर, सो एकौ सुख आहि॥
अब हौं बरनि सुनाऊँ ताही, जो कछु मो उर अंतर आही।
धर पै इक निरभय पुर रहै, ताकी छबि कबि का कहि कहै।

बने गोपुर सुंदर, सु बास, जनु धर पै डूंगर कैलास।
ऊँची अटा घटा छतराहीं, तिन पर केकी केलि कराहीं।
नाचत सुभग सिखंड डुलत यौं, गिरिधर पिय को मुकुट लटक ज्यौं।
गुही छुही छवि देत अति, अस कछु बनि रह्यौ बान।
ईशान आवत देव जनु, चढ़ि चढ़ि विमल विमान॥
आसपास अमराइ बरारी, जहँ लगि फूलत नी फुलवारी।
सुभग फूल बागन छवि भरी, अवनी उतरि परी जनु परी।
बोलहिं सुक, सारिक, पिक, तोती, हरियर, चातक, पोत, कपोती।
मीठी धुनि सुनि अस मन आवै, मैन मनौ चटसार पढ़ावै।
फलन के भार नमित द्रुम ऐसे, संपति पाइ बड़े जन जैसे।
सर करहिं कासार निकाई, सारस हंस बंस छवि छाई।
निरमल जल जनु मुनि-मन आही, परसत स्वत जन-पातक जाही।
फूल फूलि रहे जलज सुदेसे, इंदीवर, राजीव, कुसेसे।
मानौं दल पराग परी ऐसी, चीर फुटक भरी आरसि जैसी।
पदमन सौं जब पौन डुलावै, तब लंपट अलि बैठि न पावै।
जनु नवसारति मानिनि तिया, आन जुवति रत जान्यौ पिया।
रजनी-अंत नलि पुंज अलि, गुंजत झूमि परभात।
जनु बंदि-जन नरपतिनि भज्यौं, रोवत ताके तात॥
धर्मधीर तहँ एक नृप राजा, प्रगटयौ धर्म धरन के काजा।
जस सौं धवल [illegible] सोहै, कीरति सुनत भनत मन मोहै।
[illegible] गुनिगन दान बखाने, निसि-दिन रहत सुनत संधाने।
नगर [illegible] हर्षहि [illegible], सर आवहि जन राज दुआरा।

अस अहेर नित खेलै जोई, जो देखै सो अचरिज होई।
ताके इक कमनीय सु कन्या, जिहि अस जनी जननि सो धन्या।
नाम अनूप रूपमंजरी, अंग अंग सुभ लच्छन भरी।
सो सोहति अस बैस कुमारी, हिमगिरि घर जनु हिमवत वारी।
लटकि लटकि खेलनि लरिकाई, लरिकपने जनु भूपन पाई।
रूप मृगी की चंचल छौनी, पावन करति फिरति छवि औनी।
देखि रूप घन छाया करहीं, पसु-पंछी सब मोहन फिरहीं।
अस कछु लखिये लखन लपेटी, दुसरी मनहुँ समुद की बेटी।

ता भूपति के भवन कोउ, दीप न वारत साँझ।
विन ही दीपक दीप जिमि, छिपइ कुँवरि घर माँझ॥

सहज सुगंध साँवरी अलकैं, विन हि फुलेल उलेल सी झलकैं।
नीरस कवि जे रसहि न जानैं, ब्याल वाल सम वाल वखानैं।
भौंह जु चुभि रही मेरे मन ही, वालक मनमथ की जनु धनुही।
छूटी खुभी सुभी जगमगी, काम-कलभ जनु दँतिया उगी।
ऊजल हीन लगे अँग नीके, कंचन भूपन ह्वै चले फीके।
सव कोउ कहै कि अज हूँ हीनो, अंग अंग में अव कछु टीनो।
जव कोउ वा तन तनक निहारै, ताकौ निधरक पँचसर मारै।
लोग कहैं कोउ काम-पियारी, तनुजा आहि कि अनुजा वारी।
वाल वयस सँधि मे छवि पावै, मन भावै, मुँह कहत न आवै।
नाहिंन उलहे उरज दरारा, पै मधि लुठन लग्यौ मोति हारा।
कुच अंकुर अंचल नहिं वलै, नैनन माँझ लाज गहि चलै।
खेलत कान तहाँ दै रहै, जहँ कोउ काम-कथा कछु कहै।

गुड़ा-गुड़ी के ब्याह बनावै, लाज गहैं जब सेज सुवावै।
बाला बड़नैंनि, रूप जनु, दीप जग्यौ जग ऐन।
उड़ि उड़ि परत पतंग जिमि, नर-नारिन के नैन॥
ब्याहन जोग जानि पितु-माता, कीनौ मत्र बोलि सब ग्याता।
रूपवंत, गुनवंत, उदारा, सीलवंत, जसवंत, सु दारा।
अस कोउ ढूँढ़ै राजकुमारा, ताकौं दीजै इहै बिचारा।
करि बिचार, निज बिप्र बुलायौ, बार बार सब बिधि समझायौ।
अहो बिप्र ! धन लोभ न कीजै, या लाइक नाइक कौं दीजै।
लोभी द्विज कुबुद्धि अस कीनी, कूर कुरूप कुँवर कौं दीनी।
धन भयौ गौं ह्वैउ सयाना, मूरख मित्र जु अहित समाना।
सहज सुनत जु भरयौ नर आही, रंचक लोभ बिगारै ताही।
सब मोहैं, गहबरि पछिताई, कूर बिधाता कौन बनाई।
सब मन गुरि चिंतन करत, परत न कछू बिचार।
कर्म करी, किधौं द्विज करी, किधौं करी करतार॥
निरखत तन रूप बदन भरयौ ऐसैं, दुतिया चाद कलन करि जैसे।
कुमरि राउ तन उर-पुर भयौ, सैसव राउ जवन-बन गयौ।
अस्त भयौ जब दोउ नरेसा, छीन परयौ तब तिय मवि देसा।
निरखत सर. बालापन पानी, जोबन-तरनि किरन अधिकानी।
ज्यौं ज्यौं सैसव-जल सुरझाने, त्यौं त्यौं नैन-मीन इतराने।
सो तरुनाई जुवन बर बाला, राजति नख-सिख रूप रसाला।
नाभि अरु सर-स्यान मैं जाही, फूले अमलन कमलन माही।
निरखत परिमल तब मनि पावै, अनुज नहि नव अलि चलि आवै।

इंदुमती जब भँवर उड़ावै, इंदुवदनि अन्हाँन तब पावै।
पौछे डारति रोम की धारा, मानति वाल सिवाल की डारा।
चंचल नैंन चलत जब कौने, सरद कमल दल हू तें लौने।
तिनहि श्रवन विच पकरयौ चहै, अंबुज दल से लागै, कहै।
नवला निकसति तीर जब, नीर चुवत वर चीर।
अँसुवन रोवत बसन जनु, तन बिछुरन की पीर॥
अब कछु ताकौ सहज सिँगारा, बरनौ जग-पातक छय-कारा।
गौर बरन तन सोभित ती कौ, औटे कंचन कौ रँग फीकौ।
चंपक कुसुम कहा सरि पावै, वरन हीन, वास बुरी आवै।
उबटन उबटि अंग अन्हवाई, ओपी दामिनि लोपी माई।
सीस-पुहुप गूँथनि छवि ताही, मनौ मदन-मृग कानन आही।
बैनी बनी कि साँपिनि आही, बुरी दीठि देखै तिहि खाही।
सोहत वैदि जराइ की ऐसी, भाल भाग-मनि प्रगटी जैसी।
भ्रुव-धनु देखि मदन पछितयौ, हर के समर समै किन भयौ।
अब याके बल करौ लराई, हरौ छिनक मैं हर-हरताई।
बालपने पग चंचलताई, अब चलि छबिले नैननि आई।
इत-उत चहनि-चलनि अनुरागे, बात करन कानन सौ लागे।
मोहियत दृगन के अचरिज भारे, चलहि आन तन आनहि मारे।
मृगज लजे, खंजन भजे, कंज लजे छबि छीन।
दृगन देखि दुख दीन ह्वै, मीन भये जल लीन॥
नासिक-नथ जनु मनमथ पासी, हाँसी हरि देव की माया सी।
मृदु कपोल छबि बरनि न जाही, झलकै अलक खुभी जिन माही।

अधर मधुर मधि रँग जु ढारी, अरुन पाट जनु पुई पवारी ।
लसत जु हँसत दसन की जोती, को है दाडिम को है मोती ।
चिबुक-कूप छबि उमकै जोई, जगत-कूप पुनि परै न सोई ।
कंठ-लीक छबि पीक की धारा, फीक परी सब छबि संसारा ।
दृग निर्बोरी दिखि भई बौरी, जगत ठगौरी जनु इकठौरी ।
ससि समान जे बदन कराहीं, अस नर्गी कहौ कि तिन बुधि नाहीं ।
जाके संग मृगकि जब चहै, रह छबि ससि मैं कहहु कहाँ है ।

रूपमंजरी बदन-बिधु, बिधना जग मैं टेकि ।
पटतर बाढ्यौ ससि नभसि, मानौ डारयौ छेकि ॥

मृदुल कर राजत रँग भीने, एक कमल के जनु बिबि कीने ।
मनन दै जु उठे कुच दोऊ, आवै न उपमा आँखि तर कोऊ ।
श्रीफल, कुंभ, शंभु सम माने, सकल कबिन तेउ नहिं परमाने ।
तनु तरुनी कुच की नालि बिबि करी, रवनी उर-अवनी पर धरी ।
रोमराजि अस देति दिखाई, जनु उन तैं बैनी की झाँई ।
किधौं नीलमनि किंकिनि माहीं, रोमावलि तिहि जोति की छाँहीं ।
किधौं नदी कटि दिखि बलनारा, रोमधार जनु धरयौ अधारा ।
राजत कटि किंकिनी रसाला, मदन-सदन जनु बंदनमाला ।
पायनि मनिमय नूपुर धुनी, कंज-रिंजर मनौ मनमथ मुनी ।

चरन धरत जहँ जहँ तरुनि, अरुन होत सो लीह ।
जनु धरती धरनी फिरै, जहँ तहँ अपनी जीह ॥

रुचि, लावन्य, रूप मधुराई, कांति, रवनता, सुंदरताई ।
सुकुमार, सुकुमारता, ऐ गाई, नहिं जनियत इन भिन ते आई ।

दुति तिय तन अस दीन दिखाई, सरद चंद जस झलमलताई।
ललना तन लावन्य लुनाई, मुक्ताफल जस पानिप झाँई।
बिन भूषन भूपित अँग जोई, रूप अनूप कहावै सोई।
निरखत जाहि तृपति नहिं आवै, तन मैं सो माधुरी कहावै।
ठाढी होत अँगन जब आई, तन की जोति रहति छिति छाई।
राजति राजकुँवरि तहँ ऐसी, ठाढ़ी कनक अवनि पर जैसी।
देखत अनदेखी सी जोई, रमनीयता कहावै सोई।
सब अँग मिले सुठौन सुहाई, सो कहियै तन सुन्दरताई।
परसत ही जनु नाहिन परसी, अस मृदुता प्रमदा तन दरसी।
अमल कमल-दल सेज बिछैयै, ऊपर कोमल बसन डसैयै।
ता पर सोवत नाक चढ़ावै, सो वह सुकुमारता कहावै।

रूपमंजरी छवि कहन, इंदुमती मति कौन।
ज्यौं निरमल निसिनाथ कौं, हाथ पसारै बौन ॥

सखि अस अद्भुत रूप निहारै, मूसति मन, कोसति करतारै।
कहति कि कछु इक करौ उपाई, ज्यौं इह रूप अफल नहिं जाई।
रस मैं जो उपपति-रस आही, रस की अवधि कहत कबि ताही।
सो रस जौ या कुँवरिहि होई, तौ हौ निरखि जियौं सुख सोई।
औ परि जौ या लाइक पेयै, सो नाइक दिखि आनि मिलैयै।
जाहि मिलत पुनि ऐसियौ रहै, दई अस नाइक कोऊ कहै।
जहँ जहँ नर बर, सुर बर सुने, देखि फिरी अरु मन मन गुने।
देखत के सब उज्जल गोरे, हार काज नहिं आवत ओरे।

सुन्दर धाम के धाम सब, तिनहिं बीच बिकराल ।
तिन मैं रहै नैंगैं बसैं, छैल छबीली बाल ॥

एक सुनियत सब लायक नायक, गिरिधर कुँवर सदा सुखदायक ।
हौं निज तिनहिं कौन बिधि पाऊँ, क्यों या कुँवरिहिं आनि मिलाऊँ ।
जाकौं संत समाधि लगावैं, जोगी जन मन हू नहिं आवैं ।
निगमहि निपट अगम जो आही, अबला किहिं बल पावै ताही ।
इक बौना, अरु नीचे आवै, ऊँचे फल कों हाथ चलावै ।
त्यौं फल पैयै दूरि निवासी, हेरनहार करैं सब हाँसी ।
जौ चहि जानै तौ फल पावै, कै फल आप दया करि आवै ।
एक दिन गिरि गोवर्धन जाई, गिरिधर पिय प्रतिमा दिखि आई ।
तब तैं यौं उर-अंतर राखी, जो गुरुदेव दया करि भाखी ।
सागर ढिंग ह्वै चंद बतैयै, सो सूच्छम, तब ही लखि पैयै ।
ये तो रूप दुन ही उनहारी, नहि अचरिज हितु चहियै भारी ।
सहचरि के चित चैन न परै, अनुदिन तिन सौं बिनती करै ।
अहो पिय गिरिधर परम उदारा, करता हू के तुम करतारा ।
सकलापन नरिंद कौ गह तरि, पाई हुती किहू क्रम क्रम करि ।
सो लगि सूरति हैं मधि धारा, मोहनलाल लगावहु पारा ।

निसि-दिन तिय बिनती करति, और न कछू सुहाइ ।
मन दै हारक नाथ के, पुनि पुनि पकरति पाइ ॥

उन दिन सखि सो राजकुमारी, पौढ़ी हुती कनक चित्रसारी ।
सुपन सोक दुख सुन्दर नायक, पायौ कुँवरि आपनी लायक ।

तन-मन मिलि तासौ अनुरागी, अधर, सधर खंडन मै जागी।
लै सितकार, सखिहि घुरि गई, सहचरि निरखि ससंकित भई।
क्यौ वलि वलि ! कहि छतियन लाई, दसा देखि अति संभ्रम पाई।
भूत लगाइ मनू है आई, कै कछू क्रूर ग्रह गत माई।
यह ससार असार अपारा, तामै तनक हुती आधारा।
अव किहि धरिहौ, परिहौ पारा, वैर परचौ पापी करतारा।
प्रात उठी तिय ललित लजौही, चितइ न सकै सहचरी सौही।
पूछति प्यार भरी सखि ग्याता, कहि बलि आज कहा इह वाता।
लोयन लौने, ललित लजौने, चलि-चलि हँसत ह्वै कानन कौने।
देखति हौ वलि नहि तुव बस के, जस कहुँ प्रीतम रस के चसके।

को अस सुकृती जगत मै, जो निरख्यौ इन नैंन।
मो हिय जरत जुड़ाइ वलि, सीचि अमी रस बैन ॥

जव अति सखिन बूझनी लई, तव हँसि कुँवरि गोद लुठि गई।
बात कहन कछु मन ह्वै आवै, बहुरि लजाइ जाइ, छवि पावै।
कुँवरि कौ अस सुदर मुख रहै, मुख तै वात न निकस्यौ चहै।
निरखि सहचरी कौ अति तपनौ, कहन लगी तब अपनौ सपनौ।
एक ठाँउ इक बन है जानौ, ताकी छवि हौ कहा बखानौ।
आनहि रंग पुहुप मै देखे, अपनी बारी नहि तस पेखे।
औरहि भाँति भँवर रव राजै, ठौर ठौर कछू जंत्र से बाजै।
रूखन देखि भूख भजि जाई, यह उपखान साँच है माई।
रटहि विहंगम इमि मन हरै, जनु द्रुम अप मै बातै करै।
गहबर कुज-पुंज अति सोहै, मनिमय मंडप छबि तहँ को है।

मधुर बितान बान भल बाने, चंद चंदोवा के जनु ताने।
तिन तर सेज सु पेसल ऐसी, आसवान रति बेली जैसी।
सोयौं गयो निकट हौं वहीं, फूल फूलि नव अंबुज रहीं।

एक अंबुज तिन नागरि कौं, दीनौ मेरे हाथ।
सूंघत सूंघत नाहि हौं, चली अली के साथ॥

तामें अत कछु बास सुहाई, सूंघत मोहि ओंघ सी आई।
तू जनु आगे तैं चलि भई, हौं इकली ठाढ़ी रहि गई।
चकित भई पुनि भय नहि पाई, द्रुम बेली कछु सीत से माई।
तन में इक कोउ नव किसोर सौं, मनमथ हू के मन कौ चोर सौ।
कुसमन-मकरन्द मो ढिंग आयौ, नैनन में कछु चौंध सी लायौ।
मोहि हँसि चुम्बन लाग्यौ तहाँ, इन्दुमती तेरी सहचरि कहाँ।
हौं लजाइ मूरि रही अबोली, बहुत करी पै नाहिन बोली।
नव उर सुमम कुसम लै माई, मो कपोल पै ऐंचि लगाई।
मन जनु उन हौं सो अनुराग्यौ, गुरुजन डर डरि चोर सौ भाग्यौ।
मधुर वचन लगि टोन सुहाई, धीरज-राग सो हरयौ माई।
आगे सुधि-बुधि रही न मोही, कह हौं बरनि सुनाऊँ तोही।

गड्यौ जु मन बिच प्रेम-रस, क्यौं हू निकस्यौ जाइ।
कुंजर ज्यौं चहलें परयौ, छिन छिन अधिक समाइ॥

सखि कहूँ जारि फेरि हौं डारौ, रंचक कहि दनि पिय उनहारौ।
जिन लखि लखन ढूँढि हौं पाऊँ, अपनी प्यारिहि तुरत मिलाऊँ।
सखि तू मूरखि कसकि कसक बानी, किन पैयत या सपन कहानी।
चातुर चित्रन चीन्ह उपाये, पाऊँ हाथ मनोज्ञ आये।

मृगतृप्ना कब पानी भई, काकी भूख मन लड़ुवन गई।
तब बोली सहचरि सुख-दाता, क्यों कहियै बलि ऐसी बाता।
जो अनुकूल होइ करतारा, सपने साँच करत नहिं वारा।
मृगतृप्ना हू पानी करै, मन के लड़ुवन भूख पुनि हरै।
इक हुती ऊषा मेरी अली, सपने काम कुँवरि सों मिली।
ऐसे लच्छन जो लखि पाई, तौ सखि सों सब बात जनाई।
ताकी सखी विचित्र चित्ररेखा, गई द्वारिका सूछम भेखा।
बुधि ही बुधि अनिरुध लै आई, परतछ आनि कै ऊपा मिलाई।
ऐसें ही जो तोहिं मिलाऊँ, इंदुमती तौ नाम कहाऊँ।

प्रेम बढावहि छिनहिं छिन, बूझि बूझि उनहारि।
ज्यों मथि काढ़ी अग्नि कन, क्रम-क्रम देत पजारि॥

कुँवरि कहै सखि किहि विधि कहियै, रूप वचन करि नाहिंन लहियै।
रूप को रस जानै ये नैना, तिनहिं नहिंन दीने विधि वैना।
अरु वह रूप अनूपम जेतौ, नैनन गह्यौ गयौ नहिं तेतौ।
ज्यों सुंदर घन स्वाति कौ माई, चातक चंचु पुटी न समाई।

कह्यौ चहति पुनि नहिं कहति, रहति डरपि इहि भाइ।
मोहन मूरति हीय तैं, कहत निकसि जिनि जाइ॥

चटपटि परी सहचरी हिये, पूछति बहुरि बलैया लिये।
कहन लगी तब पिय उनहारी, राजति लाज सौं राजकुमारी।
स्याम बरन तन अस रस भीनौ, मरकत रस निचोइ जस कीनौ।
मोर चंद सिर अस कछु लौनौ, मानौं अली टटावक टौनौ।
सोहत अस कछु बाँकी भौंही, मो मन जानै, कै पुनि हौं ही।

नलिनि-नलिनि सुन्दर कमलन दल सोजै, तिन को सौनौ पानिप दीजै ।
ता मोहन के नैनन आगे, अलि ! तेऊ अति फीके लागे ।
मानिक मोती जगमग जोती, कहत जु सो मति होती ओती ।
पीत बसन दुति परत न कही, दामिनि सी कछु थिर ह्वै रही ।
लाल के लाल कछनि छवि ऐसी, लाल निचोइ रँगी होइ जैसी ।
मुरली हाथ सुहाई माई, बिनहिं बजाये राग चुचाई ।
ताके रूप अनूप रस, बौरी हौं मेरी आलि ।
आज ललक सुधि परत है, सबै कहौंगी कालि ॥
सुनतहिं सुरझि परी सहचरी, आनँद भरी, अचमे भरी ।
बड़ी बेर जागी अनुरागी, मन ही माँझ कहन यों लागी ।
कहँ हौं कुटिल, कलंकिन, कुहिय की, कहँ यह दया सावरे पिय की ।
अनेक जन्म जोगी तप करै, मरि-पचि चपल चित्त कौ धरै ।
तौ चित लै जहिं ओर चलावै, तौ वह नाथ हाथ नहिं आवै ।
जब गोपिन को सो हित होई, तब कहुँ जाइ पाइयै सोई ।
धन्य पुन्य या तिय के माई, नंद सुवन पिय सों मिलि आई ।
निरखति रूप-सदन विश्रामा, तामें बसी, लसी यह भामा ।
जब दुलहिन को दरपन जोई, तामें मुँह झकि आई सोई ।
सहचरि भूली सी रहै, फूली अँग न समाइ ।
रंक लहै चकचौंधि जिमि, सुंदर नैनहिं पाइ ॥
सूरति कान्हि है सजनि सयानी, गुनन को आनन क्यों मुरझानी ।
सखि कहै सखि कछु गुनन न होई, सदन आहि अब सुनि लै सोई ।
मेरी रूप अनूप सुभायक, आन्यौ ज्ञान बिरुथ बिन नाइक ।

तब मै इह इक देव मनायौ, सो बलि तो कौ सुपने आयौ।
बहुतन बहुत भाँति तन तायौ, पै इहि नाइक बिरलै पायौ।
देखि कै बलि तुव भागि बड़ाई, तातै मोहि मुरझाई आई।
मुसकि कुँवरि सहचरि सौ कहै, तौ वह देव कहाँ है रहै।
सखि कहै बलि जिहि वन तै पायौ, ते ही वन इक गाँउ सुहायौ।
गोकुल गाँउ, जाउँ बलिहारी, जगमगाइ छबि जग तै न्यारी।
तहँ कौ गोप नद बड़ राजा, सदा सरवदा एकहि साजा।
जसुमति रानी सब जग जानी, भाग-भरी, सुर-नरन बखानी।
रमा, उमा सी दासी जाकी, ठकुराइत का कहियै ताकी।
तिन कौ सुत सो कुँवर कन्हाई, ताकी छबि तू दिखि ही आई।

तिय-हिय दरपन, तन रुई, रही हुती पुट पागि।
प्रीतम तरनि किरनि परसि, जागि परी तन आगि॥

निरबिकार तिय हिय मै सपने, उपज्यौ भाउ सुभावहि अपने।
प्रथमहि पिय सौ प्रेम जु आही, कबि जन भाउ कहत है ताही।
रूपमंजरी तिय कौ हियौ, गिरिधर अपनौ आलय कियौ।
इंदुमती तहँ अति अनुरागी, ताही मै प्रभु पूजन लागी।
जहँ जहँ जो कछु उत्तम पावै, सो सब आनि कै ताहि चढावै।
बान बनावै, पान खवावै, मंद हिलौर हिँडौर झुलावै।
छिन छिन भाउ बढत चल्यौ ऐसैं, सरद द्वैज ससि कलान जैसैं।
भाउ बढ्यौ क्यौ जानियै सोई, और बस्तु कौ ठौर न होई।
भाउ तै बहुरि हाउ छबि भई, सहचरि निरखि बलैया लई।
रूप-जोति सी लटकति डोलै, सब सौ वचन मनोहर बोलै।

अँग अँग प्रेम-उमँग अनि सोहै, हेम छरी जराइ जरी को है।
नैन बैन जब प्रगटैं भाउ, ताकौं सु कवि कहत है हाउ।
हाउ तें बहुरि जु उपज्यौ हेला, मनि कहुँ परम अमी रस रेला।
बार बार कर दरपन धरै, कुंतल हार सँवार्यौ करै।
इनि सिंगार मगन मन रहै, ताकौं कवि हेला छवि कहै।
ता पाछे उपजी रति नई, सलिल वारि मनिमाला दई।
उनिन सु गाम-ग्राम लौ करै, जानै नहीं कवन अनुसरै।
भूख पियास सबै मिटि गई, खाइ कछू गुरुजन की लई।
मन की गति पिय पै इक धारा, समुद मिली जैसे गंग की धारा।
उमगि कै नैन नीर भरि आवैं, पुनि सुखि जाइ, महा छवि पावै।
पुलकि अंग सुर-भंग जनावै, बीच-बीच मुरझाई आवै।
बिबरन तन अस देउ दिखाई, रूप-बेलि जैसे घाम मैं आई।
तनक बात जो पिय पै पावै, सो बिरियाँ सुनि नृपति न आवै।

रूपमंजरी तिय हियहि, पिय झलकै इमि आइ।
चंद्रकांत मनि साँझ जिमि, परम चंद्र की झाँइ॥

प्रगट मिलन को अति अरबरै, रहनि बैठि तिय जतनन करै।
दरपन लै उर आगे धरै, मनि जहाँ झाँई पिय की परै।
बाल अर्क सम बिरह जनायौ, तिय तन तनक तप्त ह्वै आयौ।
सास कै डरि उसास नहि लेहि, मूँदे मुँह तिहिं उत्तर देहि।
ताते उसासन जो गोइ सहै, बाल बिरहिनी का तब कहै।
सौ गोइ सखन पुन फिकरावै, हाथ न छुवै निकट धरवावै।
उसासे रस कू लिन्ह जुर मानै, मनि मुरझाहि उगनि तिय याते।

मन सौं कहै कुटिल तू आही, इकली ई उड़ि पिय पै जाही।
रंचक नैनन हू सँग लै रे, मोहन मुख दिखि आवन दै रे।
साँवरे पियहि सुमिरि वर वाला, भरहि उसास दुसास विहाला।
ते उसास अस अगिनि की उगी, कुँवरि कि देवी ज्वालामुखी।
अंजन विन दिखि नैन सुहाये, खंजन दुरे कहूँ तें आये।
देखि कुँवरि को वदन उदास, इंदु मुदित ह्वै उदित अकास।

निरखि मलिन मुख,नलिन अलि, फूले सब इकमार।
वैरी चोल्यो जगत मैं, तू जिनि करि करतार॥

द्वैज चंद दिखि भै भरि भारी, उगी गगन जनु काम कटारी।
टूटहि तार कि अँगार वगावै, काम भूत जनु मोहि छरावै।
पुनि पूरन ससि कौ दिखि डरी, आवत मैन लिये जनु फरी।
कवन समै आयौ यह सजनी, इंदु अनल वरसै सव रजनी।
भली करहिं जौ इन दिन माही, प्रानपियारे आवहि नाही।
कुँवरि कहति सखि या ससि राँड़े, राहु राउ क्यौं गिलि गिलि छाँड़ै।
सखि कहै राहु अमृत जव पियौ, तेरे कंत खंड विवि कियौ।
उदर नहिन जामैं यह पचै, निकसि निकसि विरही जन तचै।
कुँवरि कहै दुख खंडन माई, जरा आनि किन लेहि जुराई।

कै अहरनि पर धरि मुकर, सु कर लौह घन लेइ।
जव ही आनि परै तहाँ, तव ही ता सिर देइ॥

इमि इमि करतहि हिम रितु आई, तामैं तरनि तरुन दुखदाई।
बड़ि वड़ि रैन तनक से दिना, क्यौ भरियै पिय प्यारे विना।
जाड़ राँड जव अलि तन दहै, साँवरे उर घुरि सोयौ चहै।

नैन मूँदि निसि नींद न आवै, मनि वह सुपन बहुरि हू आवै ।
नींद न आवै सब काहू कहई, नींद मनौं कहुँ सोइ है गई ।
जनि सिसु-लोचन संगें रहै, प्रीतम अधर-सुधा कौं चहै ।
जिनपति देखि दसा जब आवै, भरि भरि नैनन नीर पियावै ।
तब है मृगमद लै मृगनैनी, रहसि बैठि रचि मूरति मैनी ।
सीस नवै, कर माला धरै, पाइनि परि परि बिनती करै ।
अहो बड़ो मैन ! देव तुम बड़े, जाके सर सिव के उर गड़े ।
ते सर छोड़न अबलन माहीं, पुरुष गाउ इह पौरुष नाहीं ।

तिय तन बिनन जु पंच सर, लगे पंच ही बाट ।
नंदक साँवरे पीय बिन, क्यौं निकसत यह नाट ॥

सरद रितु बीति, सीत रितु आई, सीत भई जस बाघ नै गाई ।
एक दिन निज निज जिय सौं कहै, इहि तुषार तू क्यौंहुँ न रहै ।
ग्रीषम सौं पुनि, सीत रवि ताकौं, जल सौं जनक, जगत जस जाकौं ।
सो पंकज इहि हिम रितु जार्यौ, जलते मांझ न किन हुँ उबार्यौ ।
तू को आहि, हितू को तेरौ, एक मित्र, सो नाहिन नेरौ ।
पुनि सम्हारि करि बचन सँभारा, बोली मुलकि सुधा की धारा ।
कहनि कि तू जौ पावस बीतै, तब हौं आनि मिलैहौं मीतै ।
पावस बीति सरद रितु बीती, हिम रितु बीती सीत समीती ।
अब बसंत रितु आगम आयौ, जापै जैहै जीउ जिवायौ ।
मिलन बसंत सखा दोउ ऐसैं, पावक पवन मिलें जग जैसैं ।

मदन सखा, मनमथ छिपा, तथा उठी तन जागि ।
बिरह बिथा सासै, क्यौं रहै, कढ़ै लपेटी आगि ॥

घैर तैं डरपि सखी घर लाई, घर हू वड़ी वेर सुधि आई।
भूत छुयें, मदिरा पियें, सव काहू सुधि होइ।
प्रेम-सुधा-रस जो पियै, तिहिं सुधि रहै न कोइ॥
वात सुनत जननी उठि धाई, वाछी पर जग आछी गाई।
इंदुमती पैं अति रिसिआई, आलि काल्हि तैं कहाँ खिलाई।
चतुर सहचरी वात दुरावै, वात की वात मात नहिं पावै।
मोहिं वरजन वहेर तर गई, ना जानौं कछु तहँ तैं भई।
छाती लगाइ जननि अस कहै, कौंन भूत जो तो तन चहै।
गोकुलनाथ को पूत हमारे, भूतन के भूतन धरि मारे।
इक पहिले यौं अवुध ह्वै रही, पुनि निज मात वात अस कही।
जस कोउ मिरा-मत्त इक आही, तामैं भूत लगे पुनि ताही।
वहुरि नारि निवारि सी लई, जननी निरखि ससंकित भई।
भूतावेस अवसि है माई, दौरौ कछु इक करौ उपाई।
सखि कहै, काहु वोलि किन आनौं, एक मंत्र अस हौं हूँ जानौं।
कहति है दुख अकुलानी रानी, तव लगि तू ही झारि सयानी।
कान लगी सहचरि कहै, जागि छवीली वाल।
वे आये, उठि, देखि वलि!, मोहन गिरिधर लाल॥
उठि वैठी भई राजकुमारी, ढिंग वैठी देखी महतारी।
मा तन चितै निपट लजि गई, जानी हौइ वात जिनि दई।
निरखि सुता कौ सहज सुभायौ, जननी जठर जीउ तव आयौ।
सहचरि निपट सयानी जानी, रानी तिहि छिन अति सनमानी।
उर तैं काढ़ि हार पहिराई, हित अनहित सव वात जनाई।

ससि तहँ माँहि दोस कछु नाहीं, निपट अनूप रूप इन माहीं ।
छिन-छिन माहि छिछि ह्वै जाई, छिन नीकी छिन ही मुरझाई ।
नोंधौं याके अंग न लगाऊँ, फूल फुलेल न मूड़ चढ़ाऊँ ।
दरपन देखन देउँ न नाहीं, डरौं आपनी डीठि तें हौं ही ।
सो कहै मेरी सौं रूप सुभाइक, सुंदर गिरिधर लाल के लाइक ।
ऐ पहि अपनौ कर्म सौं माई, भुगते बिन कोउ तीर न जाई ।
बिरहिनि कुँवरि जनु हिय धरि जाई, जनु याही मे कुँवर कन्हाई ।

हौं जानी पिय मिलन तैं, बिरह अधिक सुख होइ ।
मिलतैं मिलियै एक सौं, बिछुरे सब ठौं सोइ ॥

ता पाछे बसंत रितु सहा, आई सो दुख कहियै कहा ।
ता मैं मैन नृपाई पाई, पिक बोली जनु फिरत दोहाई ।
किंसुक कलिन देखि भय पाई, नहार(नाहर?)की सी नह रे माई ।
राती राती रुधिर भरी सी, बिरही जन उर ह्वै निकरी सी ।
सब बन फूल फुलि अस भयौ, आनि अनंग राउ जनु छयौ ।
बहुरें कुंज महल से बने, ऊँचे द्रुम बितान जनु तने ।
बन बाहिर जु कुंज छुट छुटी, ते जनु उठी नटिन की कुटी ।
लागे धूसन नर अन बँधे, मनौं मदमाते हाथी बँधे ।
पुनि बाट आखेटक चढ्यौ, बिरही मृग मारन रिस बढ्यौ ।
फूलन कौ धनुष पनिच अलि लिये, पाँच बान पाँचौ कर लिये ।
सोखन, कहन, उच्चाटन, छोभन, तिन मैं निपट बुरौ संमोहन ।
निगम पवन तुरंग चढ़ि धायो, झलमलि देस कुँवरि ढिंग आयौ ।
रूपमंजरी डिगि हँसि परी, बदन सुहाग निपानि अनुसरी ।

सो सुबास जब भौरन पाई, टूट पनिच सब तहँ चलि आई।
इतने हि माँझ उबरि गई माई, नातर मार, मारि तिहि जाई।
कुसुम धूरि धूँधरि दिसा, इंदु उदय रस पौन।
कुहु-कुहु जौ कोइल करै, विरही जीवै कौन॥
तातै बहुरि जु ग्रीषम आई, अति भीषन कछु बरनि न जाई।
बड़रे तपत, पहार से दिना, क्यौ भरिहै पिय प्यारे बिना।
दुपहरि तहँ डाइन सी आवै, ताहि निरखि तिय अति दुख पावै।
बाल के बालक जिय कहुँ चहै, कब लगि बाल दुकाये रहै।
अति निदाघ मैं अस सुधि नाही, दादुर रहत फनी फन छाँहीं।
तातै सतगुन बिरह की आगी, रूपमंजरी तन-मन लागी।
चंदन चरचे अति परजरै, इंदु किरन घृत बुंद सी परै।
घनसारहि दिखि मुरझति ऐसै, मृगीवंत जल दरसै जैसै।
हार के मुतिया उर झर माही, तचि-तचि तरकि लवा ह्वै जाही।
दिखि दिखि इंदुमती अरबरै, थोरे जल जिमि मछरी फिरै।
सहचरि अति अकुलानी जानी, करत सँबोध कुँवरि मृदु बानी।
कत सोचति सखि तू बड़ ग्याता, तू जस आहि, अस न पितु-माता।
दोस न तेरौ, दोस न मेरौ, यह सब दोस बिधाता केरौ।
अब मो पै छिन जियौ न जाई, जो हौ कहौ सु करहि री माई।
सुंदर सुमनन सेज बिछाई, अरगज मरगज डसनि डसाई।
चंदन चरचि, चंद उगवाई, मंद सुगंध समीर बहाई।
पिक गवाइ, केकी कुहकाई, पपिहा पै पिउ पीउ बुलाई।
मधुर मधुर तू बीन बजाइ, मोहन नंद-सुवन गुन गाइ।

यों कहि कुँअरि सींच जब सोई, घरहराइ तब सहचरि रोई।
कहत कि अहो अहो गिरिधरलाल, प्रभु तुम कैसें दीनदयाल।
मकरी डारि पुलिन जो परै, जग जद तदपि दया अनुसरै।
कृपन कूटि गहै जो कोई, ताहि बहत गहि राखै सोई।
तुम सब लायक, त्रिभुवन नायक, सुखदायक, सुभ-करन सुभाइक।
अब तुमहूँ ऐसने सुख कही, सो सब पूरि रही है मही।
जिहि-जिहि भाँति भजै जो मोहि, तिहि-तिहि विधि सो पूरन होहि।
ऐसी कहत कुँवरि उँघवानी, सहचरि दौरि उसीसा आनी।
दै उसीस पर सुंदर बाँहीं, सुंदरि सोइ गई सुख माहीं।
सो देखै सो वह बन आहीं, सुपन की संपति सब अवगाहीं।
जमुना पुलिन कलपतरु तरे, ठाढ़े कर कल बंसी धरे।
देखे मोहन गिरिधर पिया, साँवरे जगत-सदन के दिया।
तिन्हहि निरखि निज लज्जित भई, सखि पाछे आछे दुरि गई।
हँसत-हँसत पिय तिहि ढिग आये, काम तें कोटिक ठाम सुहाये।
लाग सी वह लपटनि अलबेली, अरुझी हेम प्रेम जनु बेली।
नाहीं कै रस ताहि मनावै, मोहन लाल महा छवि पावै।
ललिता-ललना सहज सुहाई, ऐसे सरस निरस ह्वै जाई।

नेह नवेली नारि कौ, बार बार बलि जाउ।
उलटावै पै पावै, निरखौं निरखाउ ॥

बोलि बोलि मादक मधु बानी, कुँवरि निहोरि कुंज मैं आनी।
ना नाहीं तिहि कुंज निकाई, जनु सुख पुंज ही करि छाई।
तामें सेज सु बैनल ऐसी, आलबाल रति बेली जैसी।

कछु छल, कछु वल, कछु मनुहारी, लै वैठे तहँ कुंजविहारी।
मन चहँ रम्यौ, ए तन चहँ भग्यौ, कामिनि कौं यह कौतुक लग्यौ।
जो पारद कौं कर थिर करै, सो नवोढ़ वाला उर धरै।
पुहुपन ही के दीपक जहाँ, जगमगि जोति लागि रही तहाँ।
प्रथम समागम लज्जित तिया, अचल पवन सिरावत दिया।
दीप न वुझै विहँसि वर वाला, लपटि गई पिय उरसि रसाला।
भोजन भूख मिलत ही लहै, औ परि इन सरि परत न कहै।
प्रेम पुलक अंकुर तिहि काला, सो अंतर सहि सकति न वाला।
चित विववान रहति नहिं सोई, रूपमंजरी अस रस भोई।
चुंवन समय जु नासिका, वेसरि मुती डुलाइ।
अधर छुड़ावन कौ मनौ, पिय की हाहा खाइ॥
सव निसि के जागे अनुरागे, रंचक सोइ गये उर लागे।
तव ही भोर के लच्छन भये, तार हार सियरे ह्वै गये।
दीपक फीके, फूल ऐलाने, परकिय तियन के हिय अकुलाने।
कुरकुट सुनि चुरकुट भई वाला, लीने उससि उसास विसाला।
जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की वात।
सूर उदोत करौत सम, चीरि किये विवि गात॥
जागि कुँवरि अपने घर आई, अपने गौने कुँवर कन्हाई।
सेज तैं उठी सुरति रस माती, सखि तन मधुर मधुर मुसकाती।
सगवगि अलकैं श्रमकन झलकैं, सोभित पीक भरी दृग पलकैं।
राजत नैन पीक रस पगे, हँसि हँसि हरि प्रीतम मुख लगे।
फूल माल जो पिय पै पाई, कुँवरि के कंठ चली सो आई।

तब तैं रूपमंजरी बाला, छिन-छिन औरै रूप रसाला ।
पारस परसि सितल होइ सोनौं, पाहन तैं परमेसुर होनौं ।
जिहिं जन मैं प्रगट हरि, प्रगट न इहि कलिकाल ।
तातैं सपने ओट दै, भेटे गिरिवर लाल ॥
जो बांछति ही रैनि दिन, सो कीनी करतार ।
महा मनोरथ-सिंधु तरि, सहचरि पहुँची पार ॥
इहि बिधि कुँवरि रूपमंजरी, सुंदर गिरिवर पिय अनुसरी ।
इंदुमती ताकी सहचरी, सो पुनि तिहि संगति निस्तरी ।
तिन की यह लीला रस भरी, 'नंददास' निज हित कै करी ।
जो यह चित दै सुनै-सुनावै, सो पुनि परम प्रेम पद पावै ।
जदपि अगम तैं अगम अति, निगम कहत हैं जाहि ।
तदपि रँगीले प्रेम तैं, निपट निकट प्रभु आहि ॥
कथनी नाहिन पाइयै, पैयै करनी सोइ ।
बातन दीपक ना बरै, बारे दीपक होइ ॥

ताहि पहिरि कैं कनक अटारी, पौढि रही भरि आनँद भारी।
रही हुती रजनी कछु थोरी, जागि परी सहजहि वर गोरी।
द्वारावति लीला सुधि भई, ताही छिन सौं विकल ह्वै गई।
दिष्टि परि गयौ चंदा गैन, लागी ताहि सँदेसौ दैन।
द्वादस मास विरह की कथा, विरहिनि कौ दुखदाइक जथा।
छिनक माँझ वरनी इहि वाल, महा विरहिनी ह्वै तिहि काल।
निपट अटपटौ, चटपटौ, व्रज कौ प्रेम वियोग।
अजहूँ नहिं सुरझै जहाँ, उरझै वड़े वडे लोग॥

मासवर्णन

चैत

चैत चलौ जिनि कंत, वार वार पाँ परि कह्यौ।
निपट असंत वसंत, मैन महा मैमंत जहँ॥
तदपि न रहे चले ई चले, कहियौ चंद भले जू भले।
तब हीं कोकिल कुहु कुहु कियौ, सुनतहि डहकि वहकि गौ हियौ।
जनु किलकार मैन मुहिं दई, जु कछु कहति ही सोई भई।
मदन जाल गोलक से भौरा, फिरि गये ऊपर ठौरहि ठौरा।
सुखद जु हुतौ तिहारे संग, अव वह वैरी भयौ अनंग।
नव पुहुपन के धनुप वनाये, मधुप पाँति तिहिं तंत चढाये।
नूतन नूतन अंकुर वान, तकि तकि मरम करै संधान।
अरु यह त्रिगुन पवन कित हू कौ, पुहुप-पराग लिये कर बूकौ।
फाग सौ खेलत बन वन फिरै, रस-अनरस सव काहू भरै।

पाँच-वान के वान समान, तिन अति चंचल किये परान।

जलचर जिमि जल-भीर मैं, परसत नाहिंन पीर।
विछुरि परैं जव नीर तैं, तव जानैं गुन नीर॥

वैसाख

आवहु वलि वैसाख, दुख-निदरन, सुख-करन पिय।
उपजी मन अभिलाख, वन-विहरन गिरिधरन सँग॥

कुसुम धूरि धूँधरी सु कुंजैं, मधुकर निकर करत तहँ गुंजैं।
गुहि गुहि नवल मालती माल, मुहिं पहिरावौ मोहनलाल।
ललित लवंग लतन की छाँहीं, हँसि वोलौ, डोलौ गलवाँहीं।
पुलिन कालिंदी कौ अति रमि, त्रिगुन पवन ही कौ तहँ गमि।
कुसुमनि-सेज सु पेसल कीजै, सिर तर सुमन-उसीसा दीजै।
इक पट ओढ़ि, पौढ़ि सुख कीजै, आवहु वलि छिन छिन छवि छीजै।
द्रुम लपटी जु प्रफुल्लित वेली, जनु मुहि हँसति सु देखि अकेली।
जौ कवहूँ पिय ध्यानहि धरौं, परिरंभन, चुंवन पुनि करौं।
रंचक सुख, वहुरौ दुख भारी, कहियौ ससि यह दसा हमारी।

इहि विधि वलि वैसाख यह, वीत्यौ सुख-दुख लागि।
सड़सी भई लुहार की, छिन पानी छिन आगि॥

जेठ

तनक न रही अमैंठ, तुम विन नंदकिसोर पिय।
निपट निलज यह जेठ, धाइ धाइ ववुवन गहैं॥

सूर के तपन तपन अति दई, घर-वन, अनल-मई सव भई।

इंद्र कोप कीनौ ब्रज अबै, जल-व्याकुल गोकुल है सबै।
आवहु बलि बिलंब जिनि करौ, बहुरचौ गोबरधन कर धरौ।
एक बार ब्रज आवन कीजै, बिरह-बिथा की औषधि दीजै।
प्रान रहे घट आइ इमि, जिमि जव अंकुर तोइ।
अन-आवन जु प्रबल पवन, झर परिहै पिय सोइ॥

कुआर

कहियौ उड़प उदार, सुदर नंदकुमार सौ।
अति कृश कीनी क्वार, हार भार तैं डारि दिय।
खंजन प्रगट किये दुख-दैना, संजोगिनि तिय के से नैना।
निरमल जल अंबुज जहँ फूले, तिन रस लंपट अलि-कुल भूले।
सुधि आवत वा मोहन मुख की, कुटिल अलकजुत सीमा सुख की।
मोरन नूतन चँदवा डारे, तिनहि देखि दृग होत दुखारे।
आवहु बलि ते सिर पर धरौ, पंख पुरातन हाँते करौ।
साँझ समै बन तै वनि आवौ, गोरज मंडित बदन दिखावौ।
वा छबि बिन ये नैन दुखारे, जरत है महा बिरह-जुर जारे।
और ठौर की आगि पिय, पानी पाइ बुझाइ।
पानी मैं की आगि बलि, काहे लागि सिराइ॥

कातिक

प्रीतम परम सुजान, कातिक जौ नहि आइहौ।
तौ ये चपल परान, पिय तुम हीं पै आइहै॥
अहो चंद! बलि चलि जिनि मंद, जाहु बेगि जहँ पिय नँद-नंद।

नभैं पाउ कीन्यौ अवगाह, जैसें वलि मन तुम्हैं गुहार ।
हाँ सरद सुहाई राति, प्रफुलित वेलि, मल्लिका, जाति ।
उदित उहँ उडगन सदा कौ, रहत अखंडल मंडल जाकौ ।
छूटि रही छवि विमल चाँदिनी, सुभग पुलिन, सु कलिंद-नंदिनी ।
सीतल मृदुल वालुका रच्यौ, जमुना सु कर तरंगन रच्यौ ।
कल्पतरु तरें मंजुल मुरली, मोहन अधर-सुधारस जुरली ।
गहे हैं पिय बहुरि बजावौ, ता करि व्रज सुंदरी बुलावौ ।
रचि रहौ पिय रास-विलास, परिरंभन, चुंबन, मृदु हास ।
सहज सुगंध साँवरी बाहु, कंठनि मेलि मिटावौ दाहु ।
पजरि परत सब अंग अव, चोवा-चंदन लागि ।
विधि गति जब विपरीत तब, पानी हू मैं आगि ॥

अगहन

अगहन गहन समान, गहियत मोर सरीर-ससि ।
दीजै दरसन दान, उगहन होइ जो पुन्य वल ॥

बिछुरन जोग वनि गयौ आइ, विरह-राहु कौ परि गौ दाइ ।
पूरन वैर सुमिरि सिर भर्यौ, मो तन-चंद आनि कै धरयौ ।
लिये सु दंत विधुंतुद गाढे, काहू पै अब कढत न काढे ।
स्रवत रहत नैनन जल धार, ते जनु चलत अमृत की धार ।
हरि-दरसन जु सुदरसन आहि, रचक आनि दिखावौ ताहि ।
हौ सखि जौ पिय नंदकिसोर, अवगुन कहत नगीं कछु मोर ।
तव तुम तिन सौं कहियौ ऐसें, बहुरि न कबहूँ भाखैं जैसें ।

मित्त जु अवगुन मित्त के, अनत नाहि भाखंत ।
कूप छाँह जिमि आपनी, हिये माँझ राखंत ॥

पूस

बिपति परी इहि पूस, अहो चंद ब्रजचंद विन ।
सबै तापनौ फूस, विन घुरि सोये स्याम तन ॥
बड़ि बड़ि रैनि तनक से दिना, क्यौ भरियै पिय प्यारे विना ।
महा वकी ज्यौ आवति राति, झट दै मोहि लीलि ही जाति ।
मदन डाढ़-बिच दै दै चंपै, तिहि दुख ताकौ तन-मन कंपै ।
रबि जौ तनक न लेइ छुडाइ, तौ मोहि निसा बकी गिलि जाइ ।
मास दिवस के हुते जो पीय, तव तुम हती हुती वह तीय ।
अब तौ बलि बलवंत पियारे, कंस, केसि, चानूर सँघारे ।
अहो चंद ! ब्रजचंद बिन, परे सबै दुख आइ ।
सदन अघासुर से भये, तिन तन चह्यौ न जाइ ॥

माह

मकर जु दारुन सीत, कहियौ ससि, पिय सौ रहसि ।
घर आवौ हरि मीत, छिनक छती सौ लागिहौं ॥
कपि गुजा लै जतन बनावै, तिहि करि अधिक अधिक दुख पावै ।
बेदन आन औषधी आन, क्यौ दुख मिटै जात नहि जान ।
दिन अरु रजनी परै तुषार, सीतल महा अगिनि की झार ।
मृदुल वेलि सी ब्रज की बाल, मुरझि चली हो गिरिधरलाल ।
अरु कहियौ बलि पिय सौ ऐसैं, देखे जात दुखित तुम जैसैं ।

जौ कबहूँ रति नींद अनैयै, सांवरो पिय सुपने में पैयै।
तदपि न सुख अब परियै जागि, पजरनि महा पवन ते आगि।
ज्यौं गगरि निज कारै चाहि, मुदित होति पति मानति ताहि।
प्रबल पवन पुनि आनि दुरावै, चपकई बिलपि महा दुख पावै।
ताहूँ छिन दुख कहियै कौन, दाधे पै जिमि लागत लोन।

माह मास के कदन करि, मास रह्यौ नहिं देह।
साँस रह्यौ घट लपटि कै, बदन चहन के नेह॥

फागुन

जौ उहि फागुन पीउ, फागु न खेलौ आइ ब्रज।
कै हौं, कै यह जीउ, कोउक तुम पै आइहै॥

मोहीं मैं नलि चंदा मंद, जहँ मोहन सोहन नँद-नंद।
कहा करैगो गुरुजन मेरौ, दुरजन क्यौं न हँसौ बहुतेरौ।
जाके अंग रोग है महा, औषधि खात लाज है कहा।
रहि लिखि धरिकै रही चटपटी, बात प्रेम की अति अटपटी।
बहुरयौ ब्रज-लीला सुधि आई, जामै नित्य किसोर कन्हाई।
सुपने कोउ दुख पावत जैसे, जागि परे सुख होत है तैसे।
तब हौं कान्ह बजाई मुरली, मधुर मधुर पंचम सुर जुरली।
मधुरा मिरदन निस उठि भोर, यह ध्वनी गवनी उहि ओर।
तहँ निरखि कुँवर बर पौरि, खलि रही निसि की चंदन खौरि।
लटपटि पाग अलक झुकि रही, सो छवि परत कौन पै कही।
आलस भरे सरस जुग नैन, जिनहिं निरखि मुरझत मन मैन।

इकले प्रानपियारे पाये, निसि के दुख सब ही बिसराये।
ताकौ देखि नैन अरबरे, सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे।
समाचार जानत तिहि तिय के, अंतरजामी सब के जिय के।
इहि परकार 'बिरहमंजरी', निरवधि परम प्रेम रस भरी।
जो इहि सुनै-गुनै, चित लावै, सो सिद्धात तत्व कौ पावै।
और भाँति ब्रज कौ बिरह, बनै न काहू 'नंद'।
जिनके मित्र बिचित्र हरि, पूरन परमानंद॥

रसमंजरी

नमो नमो आनँद-घन, सुंदर नंदकुमार।
रस-मय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार॥
है जु कछुक रस इहि संसार, ताको प्रभु तुम ही आधार।
ज्यौं अनेक सरिता जल बहै, आनि सबै सागर मैं रहै।
जग मैं कोउ कवि बरनौ काही, सो जस-रस सब तुम्हरौ आही।
ज्यौं जलनिधि तैं जलधर जल लै, बरखै, हरखै अपने कर लै।
अगिनि तैं अनगन दीपक बरैं, बहुरि आनि सब तामैं ररैं।
ऐसैं ही रूप प्रेम रस जो है, तुम तैं है, तुम ही करि सोहै।
रूप प्रेम आनंद रस, जो कछु जग मैं आहि।
सो सब गिरिधर देव कौ, निधरक बरनौं ताहि॥
एक मीत हम सौं अस गुन्यौ, मैं नाइका-भेद नहिं सुन्यौ।
अरु जे भेद नाइका के गुने, ते हू मैं नीके नहिं सुने।
हाव, भाव, हेलादिक जिते, रति समेत समझावहु तिते।
जब लगि इनके भेद न जानै, तब लगि प्रेम न तत्व पिछानै।
जहँ जाकौ अधिकार न होई, निकटहि वस्तु दूरि है सोई।
मीन कमल के ढिंग ही रहै, रूप रंग रस मधुलिह लहै।
निकटहि निरमोलिक नग जैसे, नैन हीन तिहिं पावै कैसैं।
बिन जाने यह भेद सब, प्रेम न परिचै होइ।
चरन हीन ज्यौं अचल, चढ़त न देख्यौ कोइ॥

चंचल नैंन चलत जब कोनें, सरद कमल दल हू तें लौने ।
तिनहिं श्रवन विन पकरयौ चहैं, अंबुज दल से लागें, कहैं ।
इहि प्रकार बरसै छवि-सुधा, सो अग्यातजोबना मुग्धा ।

ज्ञातयौवना

सहचरि के उरजन तन चहै, अपने चहै, मुसकि छवि लहै ।
सखि कहै अलि ये तव कुच नये, इक ठाँ बिबि संभु से भये ।
को सुकृती वह निज नख धरिहै, इन को नंदचूड जो करिहै ।
मुसकि सखी कहुँ मारै जोई, ग्यातजोबना कहियै सोई ।

मध्या

लज्जा मदन समान सुहाई, दिन दिन प्रेम चोप अधिकाई ।
पिय सँग सोवत, सोइ न जाई, मन मन इमि सोचै सुख पाई ।
सोयें प्रीतम मोहन मुख की, हानि होइ अवलोकन सुख की ।
जागे तें कर-ग्रहन प्रसंग, रम्यौ चहै नगवर वर संग ।
इहि प्रकार जुवति जो लहियै, सो मध्या नाइका कहियै ।
छूटहि हार-विहार रस, छुवौ करै कुच हार ।
उत्तम मध्या जानियै, परी सु प्रेम अधार ॥

प्रौढ़ा

पूरन जोवन गहगहि गोरी, अधिक अनंग लाज तिहि थोरी ।
केलि कलाप कोविदा रहै, प्रेम भरी मद गज जिमि चहै ।
दीरघ रैनि अधिक कै भावै, भोर कौ नाम सुनत दुख पावै ।
कुरकुट सुनि चुरकुट ह्वै भारी, मन मन देहि बिधातै गारी ।

अति प्रगल्भ बैनी, रस-ऐनी, सो प्रौढ़ा प्रीतम सुख-दैनी।

ज्ञान न उठि लपटानि सुठि, कठिन प्रेम की बात।
सूर उदोत करीन सम, चोरि किये बिबि गात॥

तहँ कोउ धीरा कोउ अधीरा, कोउ धीराधीरा रस बीरा।
मुग्धा मैं धीरादिक लच्छन, प्रगट नहीं पै लखे बिचच्छन।
ज्यों सुंदर तरु अंकुर माहीं, दल, फल, फूल डार सब ताहीं।
मध्या मैं ते प्रगट जनावैं, पल्लव, कली, फूल ह्वै आवैं।

मध्या धीरा

प्राननाथ पिय कौं जब लहै, बिन कोप के बचनन कहै।
आवत निकुंज पुंज मैं मोहन, तुम अति श्रमित भये पिय सोहन।
बैठहु बलि! हौं काहे खीजौं, नलिनी दल बिजना करि बीजौं।
लच्छन भौंह चढ़ेरी लहियै, सो तिय मध्या धीरा कहियै।

मध्या अधीरा

जागे तुम निसि प्रानपियारे, अरुन भये ये नैन हमारे।
अधर सुधासव पिय तुम पियौ, घूमत है यह हमरौ हियौ।
अधर नखछत लगे तिहारे, पीर होति पिय हिये हमारे।
बन मैं श्रीफल मिलि गये तुम कौं, काम कूर मारत है हम कौं।
बचन अविनय कहै रिस भोई, है अधीर मध्या तिय सोई।

मध्या धीराधीरा

प्रीतम कौं लखि आगत लहै, ढिग अविनय बचन कछु कहै।
अहो अहो मोहन सोहन पिया, नव अनुराग चुचात है हिया।

प्रोषितपतिका

जाकौ पति देसांतर रहै, अति संताप बिरह जुर सहै।
दुर्बल तन, मन व्याकुल होई, प्रोपितपतिका कहियै सोई।

मुग्धा प्रोषितपतिका

बिरह-बिथा निज हिय ही सहै, सखि जन हू सौ नाहिन कहै।
सीतल सेज सँवारि बिछावै, पौढि न सकै लाज जिय आवै।
गदगद कंठ रहै अकुलानी, नैनन माँझ न आनै पानी।
जामिनि सँग मनसिज दुख पावै, सो मुग्धा प्रोषिता कहावै।

मध्या प्रोषितपतिका

पिय बिन जबहि मदन जुर दहै, इहि परकार सखी सौ कहै।
सखि हो उहै उहै कर-वलै, ऐ परि कर करिये नहि चलै।
बसन सोइ, कटि किकिनि सोई, छिन-छिन अधिक अधिक क्यौ होई।
कौन समै आयौ यह सजनी, इंदु अनल बरसै सब रजनी।
इहि परकार कहत जो लहियै, मध्या प्रोषितपतिका कहियै।

प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

पिय परदेस धीर नहि धरै, पीर भीर कछु सुधि नहि परै।
तरुन अनंग तरुनि दुख बढ़यौ, अँग अँग महा गरल जिमि चढ़यौ।
बिरह लहरि जब उठि मुरझावै, वाहु कौ बलय ढरकि कर आवै।
जनु इह बलय नाड़िका लहै, जीयति किधौ मरि गई अहै।
इहि परकार पेखियै जोई, प्रौढ़ा प्रोपितपतिका सोई।

परकीया प्रोषितपतिका

प्रानपियारे पियहिं न पेखै, सो तिय सब जग सूनौ देखै ।
आन के ढिंग उसास नहिं लेहिं, मूंदे मुंह तिहिं उत्तर देहिं ।
नयन उसासन जौं कोउ लहै, परकिय बिरहिनि का तब कहै ।
सखि सब कमल फूल पचरावै, हाथ न छुवै, निकट धरवावै ।
अपने कर जु बिरह-जुर ताते, मति मुरझाहिं डरति तिय याते ।
घघा-अग्नि जिमि अंतर दहियै, परकिय प्रोषितपतिका कहियै ।

प्रेम मिटै नहिं जन्म भरि, उत्तम मन की लागि ।
ज्यों जुग भरि जल मैं रहै, मिटै न चकमक आगि ॥

खंडिता

प्रीतम अनत रैनि सब जगे, अंग अंग रति चिन्हन पगे ।
भोर भयें जाके घर आवैं, सो वनिता खंडिता कहावै ।

मुग्धा खंडिता

पिय उर उरज अंक पहिचानै, कुच चिन्ह मे कछु जिय जानै ।
नख-छत छबी तिनै चकि रहै, ते प्रीतम तें पूंछयौ चहै ।
पिय हँसि ताहि कंठ लपटावै, सो मुग्धा खंडिता कहावै ।

मध्या खंडिता

प्रीतम उर नख चिन्हन चहै, जानै पर कछुवै नहिं कहै ।
पुनि मन मैं नख-रेखाहिं देखै, मौंन न भरै, कनाखिन देखै ।
चापरि अखन तैं जल जौं आवै, मुख धोवन मिस ताहि दुरावै ।
रस मग निरखि छोडि निज मानी, मध्या सो खंडिता बखानी ।

प्रौढ़ा खंडिता

भोरहि आये मोहन लाल, तिय-पद जावक अंकित भाल।
नैनन-नीर नैन अवधारै, प्रात अमंगल तैं नहि डारै।
दर्पन लै पिय आगे धरै, विग वचन वोलै, नहि डरै।
ढकहु छती नख दिखियत ऐसैं, रति की प्रीति कौ अंकुर जैसैं।
अै परि इमि दिखियत रँग भरचौ, गाढ़ालिगन टूटि है परचौ।
इहि परकार कहत रिस सानी, सो प्रौढ़ा खंडिता वखानी।

परकीया खंडिता

पिय गर कंकन मुद्रा लहै, गंडनि श्रम-कन पुनि पुनि चहै।
नमित बदन कै ठाढ़ी रहै, प्रीति भंग भय कछुव न कहै।
दूती पर करि नैन तरेरै, भरै उसास दुसासन डारै।
टपकि टपकि दृग अँसुवाँ परैं, कमल दलन जनु मोती झरैं।
इहि परकार प्रेम रस सानी, सो परकिय खंडिता बखानी।
सब काहू सौं देखियै, लाल तिहारी प्रीति।
जहँ डारौ तहँ ही बढ़ै, अमरबेलि की रीति॥

कलहांतरिता

प्रथमहि पीय अनादर करै, पीछे तैं पछितावै मरै।
साँस भरै उर अति संताप, अरुझै, मुरझै, करै प्रलाप।
सोचति, सीस धुनति जो लहियै, सो तिय कलहांतरिता कहियै।

मुग्धा कलहांतरिता

प्रीतम अनुनय करि कर गहै, वह लजि लपटि न तासौं रहै।

पीछे मलय पवन जब बहै, तब पिय उर घुरि सोयौ चहै।
मन मन सीस धुनति जो लहियै, मुग्धा कलहांतरिता कहियै।

मध्या कलहांतरिता

रमन आनि अनुनय अनुसरै, रूप के गरब अनादर करै।
पीछे वह दुख कहति लजाई, कहे बिना हिय पीर न जाई।
चकित भई सहचरि सौं कहै, बात आनि अधरन मैं रहै।
बैठि अधोमुख सोचै जोई, मध्या कलहांतरिता सोई।

प्रौढ़ा कलहांतरिता

आवै जब मोहन रँग भरे, क्यौं मैं नैन तरेरे करे।
रस-मद भरन अनगनि क्यों परी, क्यौं कुच छुवत कलह मैं करी।
अहो गरिष्ट नष्ट बड़ कोई, पाई निधि जिहि कर तै खोई।
इहि परकार प्रलापनि लहियै, प्रौढा कलहांतरिता कहियै।

परकीया कलहांतरिता

जाके लिये पति न मैं पेखे, गरुये गुरु हलुये करि लेखे।
गिरिवर-धन मैं दीन लुटाई, नीति-सहचरी सौं बिरगाई।
लाज निलज सब तोरि हौं दीनी, सरिता बारि बूंद सम कीनी।
सो पिय मान मैं अति अपमाने, नहिं अब विधि विकलयै जाने।
इहि बिधि विलपनि-अन्तर्गत लहियै परकिय कलहांतरिता कहियै।

कबहू मानिय मन पति सौं, कलह न कीजै काइ।
मानिनि सौं उरौं करै, सो सौंतो जनि जाइ॥

उत्कंठिता

बाँधि सकेत पीउ नहिं आवै, चिंता करि तिय अति दुख पावै।
आरति करि संताप जुड़ाई, तन तोरति अरु लेति जँभाई।
भरि-भरि नैन अवस्या कहै, उत्कंठिता नाइका सु है।

मुग्धा उत्कंठिता

प्रानपिया अज हूँ नहिं आये, हौं जानौ किन हीं विरमाये।
लाज तें सखि कौ नाहिन बूझै, चिंता करि मन ही मन मूझै।
चकित भई घर आँगन फिरै, कौने जाइ उसासन भरै।
दुख तें मुख पियरी परि आवै, मुग्धा उत्कंठिता कहावै।

मध्या उत्कंठिता

करै विचार मनहि मन भई, क्यौं नहिं आये प्रीतम दई।
कै यह सखी गई नहि लैन, कै कछु डरपे पंकज-नैन।
भरि आवै जब लोचन पानी, घूम परचौ तव कहै सयानी।
सोचति इमि जल मोचति लहियै, मध्या उत्कंठिता सु कहियै।

प्रौढ़ा उत्कंठिता

प्रीतम अनआये जब लहै, ठाढ़ी कुज सदन मैं कहै।
अहो निकुंज ! भ्रात इत सुनि धौ, हे सखि जूथि! बहिन मन गुनि धौ।
हे निसि ! मात, तात अँधियारे, पूँछति हौ तुम हितू हमारे।
हो तमाल ! हो बंधु रसाल !, क्यौ नहि आये मोहनलाल।

परकीया उत्कंठिता

जिहिं मनमोहन पिय हित माई, उपज्यौ बन घन बसि न डराई।
ताऊन कवन नप मैं नहिं कियौ, बारिद बारि अन्हैवौ लियौ।
मनसिज देव सेव दिढ कीनी, लाज तहां मैं दछिना दीनी।
सु पिय आज दृग अतिथि न भये, भोरे किन हूँ भोरे लये।
यौं धन मैं मन मैं दुख पावै, परकीया उत्कंठिता कहावै।

विप्रलब्धा

पिय संकेत आप चलि आवै, तहँ प्रीतम कौं नाहिंन पावै।
सांस भरै, लोचन जल भरै, पिय सहचरि सौं झुकि झुकि परै।
मन बैराग धरै, दुख पावै, जुवति बिप्रलब्धा सु कहावै।

मुग्धा विप्रलब्धा

कपट सौंह करि करि सखि जावौं, लै आवहि निकुंज मैं ताकौं।
तहँ प्रीतम कौं नाहिंन पावै, छुभित होइ छबि नहिं कहि आवै।
नगर सौंह सौं सखी डरावै, मुग्धा बिप्रलब्धा कहावै।

मध्या विप्रलब्धा

पिय संकेत आइ बर बाला, पावै पियहि न रूप रसाला।
अधमुद्रित नैनन चकि रहै, आधी बात बदत छबि लहै।
आधी बीरी दसननि धरै, ठाटी गूट उसासनि भरै।
गद्द रूप मन बैरागहि आवै, मध्या बिप्रलब्धा कहावै।

प्रौढ़ा विप्रलब्धा

कुंज सदन सूनौ जब देखै, सखि जन हू को संग न पेखै।
कुटिल कामदेव तैं डरै, बामदेव सौं विनती करै।
भो सभो ! सूलिन, सिव, सकर, हर, हिमकर-धर, उग्र, भयंकर।
मदन-मथन, मृड अंतरजामी, त्राता होहु जगत के स्वामी।
भरि भरि नैन त्रिनैन मनावै, प्रौढा विप्रलब्धा कहावै।

परकीया विप्रलब्धा

धीरज अहि के सिर पग धरै, लज्जा तरल तरंगनि तरै।
तिमिर महा गज हाथन ठेलै, पति डर नाहर पाइन पेलै।
इहि विधि कुंज सदन चलि आवै, तहँ मनमोहन पियहि न पावै।
लता कर धरै, चिंता करै, साँस भरै, लोचन 'जल भरै।
इहि परकार परखियै तिया, सु है विप्रलब्धा परकिया।

धीर्ज सघन बन माँझ ह्वै, गुर डर गैवर ठेलि।
पति डर नाहर पेलि पग, करै कुँवर सौ केलि॥

वासकसज्जा

पिय आगमन जानि वर वाला, सुरति सामग्री रचै रसाला।
दूती पूछै, सखि सौ हँसै, करै मनोरथ विकसै, लसै।
नैननि निपट चटपटी लहियै, सो तिय वासकसज्जा कहियै।

मुग्धा वासकसज्जा

छिपी हार गूँथै छवि पावै, छल करि कटि किंकिनी बजावै।
दीप सँवारि सदन मै धरै, तिन मै तेल अधिक नहिं करै।

सखि कहुँ सेज बिछावन मिलै, घूँघट पट में मुसकै, चहै।
छिन छिन प्रीतम कौ मग जोहै, मुग्धा वासकसज्जा सो है।

मध्या वासकसज्जा

चतुर नारि गृह सखिनि दिखावै, कहै कि मो सम नोहिं न आवै। २४५
निज सौं निज पट भूखन धरै, सहचरि के अभरन सौं अरै।
द्वार निरखि देखत मिस बाला, पिय मग देखै रूप रसाला।
आगे सखिन बिलोकि मनोज, हँसि हँसि चूमै बदन-सरोज।
इहि प्रकार हिय हुलसति लहियै, मध्या वासकसज्जा कहियै।

प्रौढ़ा वासकसज्जा

प्रगटहि अंगनि अभरन सजै, सखि जन तैं रंचक नहि लजै। २५०
सेज बसन नव धूपित करै, सौरभ करि दुर्दिन सौं अरै।
सखि सौं सबै मनोरथ कहै, प्रौढ़ा वासकसज्जा सु है।

परकीया वासकसज्जा

डर सौं सुमनि सेज कौ स्वावै, छल ही छल गृहदीप सिरावै।
कोकिल छन्द के बचन सुनावै, ता पिय कौं संकेत जनावै।
बार बार हँसि करवट लेइ, जौन्ह सौं बदन दिखाई देइ। २५५
सेज परी नूपुर झनकावै, कर के कल कंकन खनकावै।
इहि प्रकार सबनि सौं लहियै, परकिय वासकसज्जा कहियै।

अभिसारिका

सबै सौंज पट-भूखन धरै, पिय अभिसार आप अनुसरै।

रूप अधिक, बुधि की अधिकाई, अधिक चोप तें अधिक सुहाई।
उठि कै चलै पीय पैं जोई, अभिसारिका कहावै सोई।

मुग्धा अभिसारिका

बोलन आई दूति दामिनी, चली संग सहचरी जामिनी।
भूत भविष्य की जाननहार, कहत है वन सुभ गवन की वार।
झींगुर मुख करि रटै अवारा, मंगल ह्वैहै न करि विचारा।
तिया मुच मुग्धा अभिराम, अभिसर चलि जहँ सुदर स्याम।
इहि विधि जाहि सखी लै आवै, मुग्धा अभिसारिका कहावै।

मध्या अभिसारिका

निरखि सुमुखि अभिसार की बारा, सखि सँग गवनै रुचिर बिहारा।
तिमिर मैं नील निचोल बनावै, वदन-चंद पट-ओट दुरावै।
मग के सर्पन तें नहिं संकै, तिन की फनि-मनि हाथन टंकै।
चंद उदय चंदन तन धरै, जौन्ह सी आपुहि हँसि हँसि परै।
रीझ मदन जा तिय के बानै, सो पुनि कुंद कुसुम सर तानै।
इहि परकार जुवति जो लहियै, मध्या अभिसारिका सु कहियै।

प्रौढ़ा अभिसारिका

एकाकी पिय पै अनुसरै, धनुधर मदन सहाइक करै।
रजनी कौ बासर सम जानै, तामैं घन जिमि दिनमनि मानै।
तिमिरहि तरनि किरन सम देखै, गहवर वन सु भवन करि लेखै।
दुर्गम मगहि सुगम करि जानै, मदन मत्त डर काकौ आनै।
इहि विधि मंजु कुज चलि आवै, प्रौढा अभिसारिका कहावै।

परकीया अभिसारिका

उरज-भार भगुर गति जाकी, परिहै टूटि लटी कटि ताकी।
चलति नहिं नकनि प्रेम के भारा, टारति काढ़ि मुक्ति कौ हारा।
धमिल खोलि सखि कहुँ फहरावै, कलि-कमल गहि दूरि बगावै।
जब अति सिथिल होति सुकुमारा, टेकत चलै बारिधर-धारा। २८०
तौ न मनोरथ-रथ तहँ होई, क्यौं पहुँचै पिय पै तिय सोई।
इहिं बिधि मोहन पिय पै आवै, परकिय अभिसारिका कहावै।

स्वाधीनपतिका

जाको पार्स्व पिया नहिं तजै, दिन दिन मदन-महोत्सव सजै।
नव नव अंबर अभरन धरै, बन बिहार रुचि पिय सँग करै।
सबै मनोरथ पूरन लहियै, सो स्वाधीनवल्लभा कहियै। २८५

मुग्धा स्वाधीनपतिका

जो कटि तैसी कृस नहिं भई, अग कांति कछु अति नहिं लई।
उरजन नहिन गरिमता तैसी, बचन-चातुरी फुरी न वैसी।
गति न मंद, नहिं चलनि सुहाई, नैननि नहिन वक्रिमा आई।
पै, सखि! पिय मन मोही माही, कारन कवन सु जानत नाही।
इहिं बिधि सखि अति बरनै सुधा, है स्वाधीनवल्लभा मुग्धा। २९०

मध्या स्वाधीनपतिका

जो कछु रति-उत्साव नहिं करौं, अंक धरत धरनी धसि परौं।
सँग सोवत नीको नहिं रहौं, चुंबन करत लाज जिय गहौं।

मेरी बात अमी जिमि भावै, मोहिं गदगद गर बात न आवै।
तदपि न पिया पार्स्व तजि जाई, तौ कहि कहा करौ री माई।
इहि बिधि सहचरि सौं कहै जोई, मध्या स्वाधीनपतिका सोई।

प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका

हे सखि औरन के जे पिया, बात सुनहिं सुकिया परकिया।
मो प्रीतम मोहीं कौं जानै, आन जुवति सपने न पिछानै।
इहि परकार कहै रस बोढा, सो स्वाधीनवल्लभा प्रौढ़ा।

परकीया स्वाधीनपतिका

प्रीतम के घर बहुत सुकीया, मोहीं सौं हित मानत पीया।
मृदु-बैनी वर वारिज-नैनी, हास-बिलास रास-रस-रैनी।
ऐ परि बन, पुर, अटा, अटारी, पिय की दिप्टि न मो तैं न्यारी।
काहू सौ कछू बात न कहै, पिय की अँखियाँ संगहि लहै।
इहि परकार कहै जो तिया, है स्वाधीनपिया परकिया।
अंजन, मंजन, पट पहिरि, गर्व करौ मति कोइ।
औरहि प्रेम सुलच्छिनौ, जिहिं प्रीतम बस होइ॥

प्रीतमगमनी

जाकौ प्रीतम गमन्यौ चहै, भीत भई कछुवै नहिं कहै।
गमन बिघन कहुँ मन मन सोचै, लोचन तैं जल नाहिन मोचै।
चित ही चित चिता-रत लहियै, सो तिय प्रीतमगमनी कहियै।

मुग्धा प्रीतमगमनी

गमन बात पिय की जब सुनै, सुनतहि मन मैं घुन ज्यौं धुनै।

ताकी सखी गुप्त भई डोलै, कुंजनि कल कोकिल ह्वै बोलै।
रूप-लता सी मुरझनि लहियै, मुग्धा प्रीतमगमनी कहियै।

मध्या प्रीतमगमनी

पिय कौं चलत जानि वर वाला, बोलै नहि कछु रूप रसाला।
भरै न दीरघ साँस सयानी, नैनन माँझ न आनै पानी।
धरि रहै हाथ माथ के धौरैं मानहुँ आयु अछर टकटोरैं।
इहि परकार परखियै जोई, मध्या प्रीतमगमनी सोई।

प्रौढ़ा प्रीतमगमनी

हो श्रीपति-गति पूछति ताही, सत्य कहौ संदेह है मोही।
तन त्यागे हू जुवतिन कहियाँ, इह वियोग जारत की नहियाँ।
यह मैं कुसुमित सेज पटीर, देत जु बंधु मरे कहुँ नीर।
जौ परलोकहू गरल समान, क्यौं है देत बंधु अग्यान।
ऐसैं कहि कै चुप ह्वै रहै, प्रौढ़ा प्रीतमगमनी सु है।

परकीया प्रीतमगमनी

प्रानप्रिया कहुँ गमनत लहै, रहसि पाइ पिय सौं इमि कहै।
तुम हित को कुकर्म नहि किये, पन्नग फन पर मैं पग दिये।
पति-द्विजदेव-सेव सब तजी, नीति तजी, कुल-लाज न लजी।
तिन के फल जे नरक बताये, ते सब सौं कहुँ जीवित आये।
तपन जातना आदि तन कौं, कुंभीपाक पराभव मन कौं।
महा घोर रौरव जु बतायौ, कोध रूप ह्वै नैननि आयौ।

जुगति आहि पिय गमनत तोहि, क्यौ न हौहि ऐसी गति मोहि।
इहि परकार कहति तिय जोई, परकिय प्रीतमगमनी सोई।
चलन कहत हैं कालि पिय, का करिहौ मेरी आलि।
बिधना ऐसैं करि कछू, जैसैं हौइ न कालि॥

नायक-भेद

नाइक बरने चारि प्रकार, प्रमदा-प्रेम वढ़ावनहार।
एक धृष्ट, इक सठ, इक दच्छिन, इक अनुकूल सुनहि अब लच्छिन।

धृष्ट

करि अपराध पिया ढिंग आवै, निधरक भयौ, बात वहरावै।
ताकहँ पिया कटाछन तारै, हारन बाँधै, कमलन मारै।
मारि बिडारि द्वार पहुँचावै, सोवत जानि बहुरि फिरि आवै।
चपरि सेज पै सोवै जोई, नाइक धृष्ट कहावै सोई।

सठ

सीस कुसुम की गूँथै माला, भालहि तिलक करै अभिबाला।
भाम-भुजनि केयूर बनावै, उर बर मुकुत-माल पहिरावै।
मकर-पत्रिका रचै कपोल, बोलत जाइ भावते बोल।
किंकिनि-बंधन बल करि टोरै, छल करि नीवी-बंधन छोरै।
इहि बिधि रमनी-रमन जो होई, कहत है कबि सठ नाइक सोई।

दक्षिण

जब ललना-मंडल मैं आवै, अति अनुराग भर्‌यौ छबि पावै।
कहत कि ये अनेक छबि ऐना, मेरे अनगन हैं विवि नैना।

छिन छिन उनहिं निरेखिन कीजै, बदन बदन सुख कैसे लीजै।
नैन मूँदि तब तिन मैं रहै, भीतर ही सब सुख-सुख लहै।
झिगमिग तन रोमाञ्चित भये, मनौं प्रेम नव अंकुर लये।
जा नाइक मैं ये सुभ लच्छन, ताकौं दच्छिन कहत विचच्छन।

अनुकूल

निज ही तिय के रस-बस रहै, आन सुंदरी सुपन न चहै।
अनत ठौर प्रिया जब चलै, तिहि दुख ताकौ हिय कलमलै।
ज्यौं श्री राम चले बन घन मैं, सिय के चलत कहत यौं मन मैं।
हे अवनी! तुम मृदु तन धरौ, हो दिनकर! तन तपत न करौ।
अहो पवन! तुम त्रिगुन बहावौ, रे नग! मग तैं बाहिर जावौ।
रे दंडक बन! नियरे आउ, चलि न सकति सिय कोमल पाउ।
इहि परकार रहै रस सान्यौं, सो नाइक अनुकूल बखान्यौ।

भाव

प्रेम की प्रथम अवस्था जोइ, कबि जन भाउ कहत हैं सोइ।
जाके हियें भाउ सञ्चरै, निरस वस्तु सो रसमय करै।
जैसैं निंबादिक रस जिते, मधुर होंहिं मधुमय मिलि तिते।
भाउ बढ्यौ क्यौं जानियै सोई, और वस्तु की ठौर न होई।

हाव

नैन बैन सब प्रगटै भाउ, ताकौं सुकवि कहत हैं हाउ।
भ्रू-भौंति सौं लटकनि डोलै, सब सौं बचन मनोहर बोलै।

हँसै लसै, विलसे दृग-डोरे, मैन-धनुप मी भौह मरोरे।
इहि परकार जुवति जो लहियै, भाउ-भरी मु हाउ छवि कहियै।

हेला

पिय तन तनक कनखियन झाँकै, नीवी कुच प्रगटै अरु ढाँकै।
कंदुक खेलै, सखि कहुँ ठेलै, अँग अँग भाउ उमगि छबि छेलै।
छिन छिन बान वनायौ करै, वार वार कर दरपन धरै।
अति सिंगार मगन मन रहै, ताकौ कवि हेला छवि कहै।

रति

उचित सु धाम-काम तौ करै, जानै नहीं कवन अनुसरै।
भूख पियास सबै मिटि जाइ, गुरु जन डर कछु रंचक खाइ।
मन की गति पिय पै इहि ढार, समुद मिली जिमि गंगा-धार।
तनक बात जौ पिय की पावै, सौ विरियाँ सुनि तृपति न आवै।
जदपि विघन गन आवहिं भारे, ता रति-रस के मेटनहारे।
तदपि न भृकुटी रंचक मटकै, एक रूप चित रस कौ गटकै।
स्तभ, स्वेद पुनि पुलकित अग, नैननि जलकन अरु सुरभंग।
तन विवरन, हिय कप जनावै, बीच बीच मुरझाई आवै।
इहि प्रकार जाकौ तन लहियै, सो वह रग-भरी रति कहियै।
यह सुंदर बर 'रसमंजरी', 'नंददास' रसिकन हित करी।
करन-आभरन करिहै जोइ, परम प्रेम-रस पैहै सोइ।

इहि विधि यह 'रसमंजरी', कही जथा मति 'नंद'।
पढ़त बढत अति चोप चित, रसमय सुख कौ कंद ॥

मानमंजरी नाममाला

नमामि पद परम गुरु, कृष्न कमल-दल-नैन।
जग-कारन, करुनानंद, गोकुल जिन कौ ऐन॥
समुझि सकत नहिं संसकृत, जान्यौ चाहत नाम।
तिन लगि 'नंद', सुमति जथा, रचौ नाम की दाम॥
गूंथनि नाना नाम कौ, 'अमरकोस' के भाइ।
मानवती के मान पर, मिलैं अर्थ सब आइ॥

मान

अहंकार, मद, दर्प पुनि, गर्व, स्मय, अभिमान।
मान राधिका कुँवरि कौ, सब कौं करत कल्यान॥

सखी

वयस्या, सौरिन्ध्री, सखी, हितू, सहचरी आहि।
अली कुँवरि वृषभान की, चली मनावन ताहि॥

बुद्धि

बुद्धि, मनीषा, शेमुषी, मेधा, धिषना, धीय।
मति सौं मतो न करि चली, सखी विचच्छन तीय॥

बानी

बानी, बाक, सरस्वती, गिरा, सारदा नाम।
चली मनावन भामिनी, वचन चातुरी काम॥

सीघ्र

आसु, झटित, द्रुत, तूर्न, लघु, छिप्र, सत्वर, उत्ताल।
तुरत चली चातुर अली, आतुर दिखि नँदलाल॥

घर

सदन, सकेत, निकेत, गृह, आलय, निलय, स्थान।
भवन भूप वृषभान के, गई सहचरी जान॥

कंचन

कंचन, अर्जुन, कात्तिसुर, चामीकर, तपनीय।
अष्टापद, हाटक, पुरट, महारजत रमनीय॥
जातरूप के सदन सब, मानिक गच छवि देत।
जहाँ तहाँ नर-नारि निज, झाँईं झुकि झुकि लेत॥

रूपा

रुक्म, रजत, दुर्वर्न पुनि, जातरूप खर्जूरि।
रूपे की गोसाल तहँ, भूप भवन तें दूरि॥

उज्जल

शुक्ल, शुभ्र, पांडुर, विशद, अर्जुन, सित अवदात।
धवल नवल ऊँचे अटा, करत घटा सौं बात॥

सोभा

भा, आभा, सोभा, प्रभा, सुषमा, परमा, कांति।
दुति न कहि परै भवन, की, सुर भूले दिखि भाँति॥

किरन

अंशु, गभस्ति, मयूख, कर, गो, मरीच, वसु, जोति ।
रश्मि परसि ससि-सूर की, जगमग जगमग होति ॥

मोर

नीलकंठ, केकी, बरहि, सिखी, सिखंडी, होइ ।
सिवसुतबाहन, अहिभखी, मोर, कलापी सोइ ॥
नाचत मोर अटानि चढ़ि, अति ही भरे अनंद ।
छिन छिन जहँ उनयौ रहै, नव नीरद नँद-नंद ॥

सिंह

कंठअँल, पुनि केसरी, पुनि कहियै हरिजच्छ ।
मृगपति, हीर्षा, व्याघ्र पुनि, पंचानन, पलभच्छ ॥
पुंडरीक, हरि, पंचमुख, कंठीरव मृगराइ ।
सिंह पौरि वृषभान की, सहचरि पहुँची जाइ ॥

तुरंग

बाजी, बाह, तुरंग, हय, सैंधव, अरब, किक्यान ।
तरल, तुरंगन भीर अति, नैंक न पैयै जान ॥

हस्ती

हस्ती, दंती, द्विरद, द्विप, पद्मी, वारन, व्याल ।
कुंजर, इभ, कुंभी, करी, स्तंबेरम, सुंडाल ॥

सिंधुर, अनकप, नाग, हरि, गज, सामज, मातंग।
इत गयंद घूमत खरे, रंजित नाना रंग॥

अष्टसिद्धि

अनिमा, महिमा, गरिमता, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम।
बसीकरन अरु ईसता, अष्टसिद्धि के नाम॥
ये जु अष्ट सिधि कष्ट करि, सिद्धि लहैं संसार।
सो वृषभान भुवाल के, द्वार बुहारनहार॥

नवनिधि

महापद्म, अरु पद्म पुनि, कच्छप, मकर, मुकुद।
संख, खर्ब अरु नील इक, अरु इक कहियै कुंद॥
ये नवनिधि या जगत मैं, काहू बिरलै दीख।
ते सब वल्लभराइ के, परत भिखारिन भीख॥

मुक्ति

मुक्ति अमृत, कैवल्य पुनि, अपुनर्भव, अपवर्ग।
निश्रेयस, निर्वान पद, महासिद्धि वर-स्वर्ग॥
मुक्ति जु चारि प्रकार की, नहि पैयत बिन जोग।
ते बृषभान की पौरि भुकि, पावत पाँवर लोग॥

राजा

स्वामी, अधिपति, महीपति, प्रभुपति, भूपति, भूप।
राजा जहँ बृषभान बनि, बैठे सभा अनूप॥

इंद्र

शक्र, शतक्रतु, शचीपति, शक्रंदन, पुरहूत।
कौशिक, वासव, वृत्रहा, मघवा, मातलि-सूत॥
जिष्नु, पुरंदर, बज्रधर, आखंडल, रिपु-पाक।
गहि जहँ वृषभान नहँ, को है इंद्र वराक॥

देवता

देव, अमर, निर्जर, बिबुध, सुर, सुमनस, त्रिदिवेस।
वृंदारक सु बिमानगति, अग्निजिह्व, अमृतेस॥
निमिषद, लेखा, बरहिमुख, गीर्वान, अति ओप।
पवन देवता रंक तहँ, जहँ बैठे बनि गोप॥

अमृत

सोम, सुधा, पीयूष, मधु, अगदराज, सुरभोग।
अमी जहाँ कान्हर-कथा, मत्त रहत सब लोग॥

दास

किंकर, किकर, दास पुनि, अनुचर, अनुग, पदाति।
भृत्य किंन जहँ सेन से, छबि बरनी नहिं जाति॥

दासी

भृत्या, दासी, किंकरी, चेरी सरहि जु अंस।
ललन, ललितय अजिर से, को उरबसि को रंभ॥

अंतहकरन

स्वांत, हृदय, मनमथ-पिता, आतम, मानस नाँउ ।
मन मन सोचै सहचरी, भीतर किहि बिधि जाँउ ॥

अंजन

कज्जल, गज पाटल, मसी, नाग, दीपसुत सोइ ।
लुकअंजन दृग दै चली, ताहि न देखै कोइ ॥

हीरा

निष्क, पदिक, अरु बज्र पुनि, हीरा बने जु ऐन ।
सकुचति तिन तन देखि जनु, भूप भवन के नैन ॥

मोती

ससिगोती, मोती, गुलिक, जलज, सीपसुत नाम ।
मुक्ता बंदनमाल जनु, बिहँसत सुंदर धाम ॥

मंगल

कुज, अंगारक, भौम पुनि, लोहितांग, महिबाल ।
मंगल से ठाँ ठाँ उदित, धरे जु दीपक लाल ॥

सुक्र

उशना, भार्गव, काब्य, कवि, असुर-पुरोहित होइ ।
गजमोती जोती जहाँ, सुक्र धरे जनु पोइ ॥

लछिमी

श्री, पद्मा, पद्मालया, कमला, चपला होइ।
सिंधुसुता, मा, इंदिरा, विष्नु-वल्लभा सोइ॥
जाकी नैन कटाच्छ छबि, रही सबै जग छाइ।
सो लछिमी वृषभान घर, आपु बसी है आइ॥

माता

अंबा, सावित्री, प्रसू, जनयत्री, मा नाम।
जननी राधा कुँवरि की, बैठी मंगल धाम॥

नमस्कार

बंदन, अभिवादन, प्रनति, नमस्कार करि ताहि।
आगे चलि मुसकात अलि, जहाँ कुँवरि वर आहि॥

सीढ़ी

आरोहन, आरोह पुनि, निश्रेनी, सोपान।
मनिमय सीढ़ी चढ़ि चली, लखी न काहू आन॥

सुता

पुत्री, दुहिता, कन्यका, तनया, तनुजा होइ।
सुता जहाँ वृषभान की, तहाँ गई सखि सो॥

सिज्या

तलिप, तल्प, सिज्या, सयन, संवेसन, सयनीय।
कुसुम-कलित तल सेज पर, बैठी तिय रमनीय॥

उसीसा

उपबरहन, उपधान पुनि, कंदुक सोइ उछीर।
मृदुल उसीसे सौं उठँगि, बैठी मान गँभीर॥

कुसुम

कुसुम, सु सुमन, प्रसून पुनि, पुप्प, फलपिता नाम।
फूल गेंद कर वर लिये, छवि सौं खेलत बाम॥

अलक

अलक, सिरोरुह, चिकुर, कच, कुंतल, कुटिल, सु वार।
लटकी ललित ललाट जनु, चंदहि गई दरार॥

ललाट

मस्तक, अलिक, ललाट, पट, वेदी बनी जराइ।
मनहुँ भाग-मनि भाल तें, बाहिर प्रगटी आइ॥

नेत्र

लोचन, अंबक, चक्षु, दृग, अक्षन रूप अधीन।
कछु रिस-राने नेन जनु, जावक भीने मीन॥

बनसी

बडिस, कुबेनी, मीनहा, मत्स्या-धानी नाम।
बेसरि सौं उरझी जु लट, मानहुँ बनसी काम॥

कान

श्रुति, श्रव, श्रोत्र, सु शब्द-ग्रह, कर्न खुभी छवि भीर।
जनु बिवि रूप कमल-कली, फूली मुख-ससि तीर॥

ओठ

बलित ओठ, पुनि रदनछद, अधर मधुर इहि भाइ ।
जिनके नाम नु लिखत हौ, तिनके अख ह्वै जाइ ॥

दसन

रदन, दसन, द्विज, दंत, रद, इमि दसवान रस भीज । ११५
नव नीरज में जनु जमे, सीतल उज्जल बीज ॥

स्याम

स्याम, नील, मेचक, असित, चिबुक-बिंदु छबि ऐन ।
मनहुँ रसीले आंब कों, मधुकरि मूंदी मैन ॥

बृहस्पति

धिषन, सिखद्विज आंगिरस, सुराचार्य, गुरु, जीव ।
मनहुँ बृहस्पति मनि तरे, बनी निबौरी ग्रीव ॥ १२०

मुख

बदन, आस्य, आनन, लपन, वक्त्र, तुंड, छबि-भौन ।
सरस लसी ह्वै जानि इमि, जिमि दरपन मुख-पौन ॥

कर

हस्त, बाहु, भुज, पानि, कर, कबहूँ धरनि कपोल ।
कर अरविंद बिराजै जनु, सोवत इंदु अडोल ॥

ग्रीव

गल, गर, कंधर, ग्रीव पुनि, कंठ, कपोती बैन । १२५
पीक-लीक जहँ झिलमिलत, सो छबि कीनें मैन ॥

कुच

उरज, पयोधर, कुच, स्तन, उर-मंडन, छबि-ऐन।
कंचन संपुट देव जनु, पूजि छिपाये मैन ॥

किंकिनी

रसना, काँची, किंकिनी, सूत्र, मेखला, जाल।
छुद्रावलि जनु मदन-गृह, बाँधी वंदनमाल ॥

नूपुर

तुलाकोट, मजीर पुनि, नूपुर रुनकत पाइ।
झनक उठी मनु मैन की, वीना सहज सुभाइ ॥

अंबर

चोल, निचोल, दुकूल, पट, अंसुक, बासन, चीर।
पिय-तन-बास जु बसन मैं, छिन छिन करत अधीर ॥

सुक

रवत-चंचु, सुक, कीर जब, पढन लगत पिय-नाम।
झुकि झहरावति मुसकि तब, अति छबि पावत बाम ॥

दर्पन

प्रतिबिंबी, आदरस पुनि, मुकुर, सु दर्पन लेति।
पिय-मूरति नैननि निरखि, अनखि डारि तिहिं देति ॥

वीना

तंत्री, तुंबर, बल्लकी, वीन, विपंची आहि।
जंत्र बजावति सहचरी, बहुरयौ बरजत ताहि ॥

पान

मुख-वासन, तांबूल, द्विज, पान सखी-कर चाहि ।
भौंह अमैठनि, वितन जनु, चाप चढावत आहि ।।

समय

सानय, समय, अनीह, वय, अनमिष, बेला, काल ।
बड़ी बेर लौं सखिन यौं, देखी बाल रसाल ।।

पानी

अंबु, कमल, कीलाल, जल, पय, पुष्कर, वन, वारि ।
अमृत, अर्न, जीवन, भुवन, घनरस, कुस, पापारि ।।
मेघपुष्प, विस, सर्वमुख, कं, कबंध, रस, तोइ ।
उदक, पाथ, सवर, सलिल, अप, कपीट पुनि सोइ ।।
पानी नैन पखारि कै, अजन हांती कीय ।
प्रगट भई पिय की सखी, निपट ससंकित हीय ।।

भय

दर, साध्वस, आतंक, भय, भीत, द्विजा पुनि त्रास ।
डरती डरती सहचरी, गई कुंवरि के पास ।।

चरन

चरन, चलन, गतिवंत पुनि, अंघ्रि, पाद, पद, पाइ ।
पग बंदन करि कुंवरि कै, ठाढ़ी सनमुख जाइ ।।

हरदी

पीता, गौरी, काचनी, रजनी, पिंडा नाम ।
हरदी चूनौ परत ज्यौं, यौं तिहिं दिखि भई भाम ॥

क्रोध

कामानुज, आमर्ष, रुठ, रोष, मन्यु, तम होइ ।
छोभ, क्रोध भरी कौं निरखि, डरी सहचरी सोइ ॥

कुटिल

वक्र, असित, कुंचित, कुटिल, टेढ़ी भौंहन ठौर ।
अरुन कमल पर प्रात जनु, पंख पसारत भौंर ॥

भृकुटी

भ्रू, तंद्रा, भ्रकुटी, भ्रकुटि, भौंह सतर करि भाल ।
बहुत काल बीते तनक, बोली बाल रसाल ॥

कुसल (राधा-वचन)

छेम, अनामय, अभय, भव, सिव, सम, सुभ, कल्यान ।
कित डोलति कछु कुसल है, पूछति कुँवरि सुजान ॥

नाम (सखी-वचन)

संग्या, आह्वय, गोत्र पुनि, छेम-धाम तुव नाम ।
अमी-बरस या दरस जिहि तैं पूरन सब काम ॥

युवती

स्त्री, ललना, सीमन्तिनी, वामा, वनिता, भाम।
अबला, बाला, अंगना, प्रमदा, कांता, वाम॥
तरुनी, रमनी, सुंदरी, तनूदरी पुनि सोइ।
तिय तोसी तिहुँ लोक में, रची बिरंचि न कोइ॥

ब्रह्मा

अज, कमलज, विधना, पिता, धाता, शतधृत होइ।
स्रष्टा, चतुरानन, विधन, द्रुहिन स्वयंभू सोइ॥
लै लै सत सब छबिन को, जिती हुती जग माझ।
तो रचि बहु विधि निपुनता, बहुरचौ ह्वै गई बाँझ॥

सुंदर

सुभग, सुसम, बंधुर, रुचिर, कांत, कमन, कमनीय।
रम्य सु पेसल, भव्य पुनि, दर्सनीय, रमनीय॥
तैसे सुंदर वर कुँवर, नागर नगधर पीय।
जोरि रची विधना नवल, एक प्रान तन बीय॥

अर्जुन

जिष्नु धनंजय, विजयनर, फाल्गुन, कीटी होइ।
गुडाकेस, गांडीवधर, पार्थ, कपिध्वज सोइ॥
अर्जुन ज्यों धनुधर अवधि, तिहि सम और न बीय।
तिमि तुव प्रेम अवधि सुबुधि, रची तरुनि-मनि तीय॥

प्रिया

इष्टा, दयिता, वल्लभा, प्रिया, प्रेयसी होइ।
प्रिय के संगी प्रीतमा, और न देखी कोइ॥

लता

व्रतती, व्रिशती, वल्लरी, बिरुधी, लता, प्रतान।
अमरबेलि जिमि मूल बिन, इमि छिजियत तुव मान॥

मित्र

सुहृद, मित्र, वल्लभ, सखा, प्रीतम परम सुजान।
पिय प्यारे पै जाहु बलि, न करि अकारन मान॥

पुत्र

आत्मज, सून, अपत्य, सुत, तनुज, तनय अरु तात।
नँद-नंदन गोविंद सौं, न करि गर्व की बात॥

नर

मानुष, मर्त्य, मनुष्य पुनि, मानव, मनुज, पुमान।
नर जिनि जानै नंद-सुत, हरि ईसुर भगवान॥

वेद

आम्नाय, श्रुति, ब्रह्म पुनि, धर्म-मूल सब काम।
निगम, अगम जाकौ कहैं, सो ये सुंदर स्याम॥

ऋषि

ऋषि, भिच्छूक, तापस, जती, वृती, तपी, मुनि आहि।
जोगी निर्मल मन किये, नित ही खोजत ताहि॥

शेष

शेस, महा अहि, नाग-पति, धरनी-धरन, अनंत ।
सहस बदन करि गुन गनत, तदपि न पावत अंत।।

धर्मराज

वैवस्वत पुनि पितरपति, संजमनीपति होइ ।
महिषध्वज, नरदंडधर, समवर्त्ती पुनि सोइ ।
अंतक, काल, कृतांत, जम, जग जातें डरपत ।
सो तुव पिय भ्रू-भंग तें, थर थर अति कांपत ।।

कुबेर

गुह्यजनेस्वर, वैश्रवन, धनद, ऐलबिल होइ ।
गुह्यकपति, त्र्यंबक-सखा, राजराज पुनि सोइ ।।
नरवाहन, किन्नरअधिप, द्रव्याधीस कुबेर ।
सो तुव पिय-पद-परस कौ, पावत नाहिं सु बेर ।।

वरुन

वरुन, प्रचेता, पासपति, जलपति, जलचर-ईस ।
सो तुव पिय के पगन पर, घिसत रहत नित सीस ।।

उमा

उमा, अपर्ना, ईस्वरी, गौरी, गिरिजा होइ ।
मृडा, चंडिका, अंबिका, भवा, भवानी सोइ ।।
शर्वा, मेनकजा, अजा, सर्वमंगला नाम ।
जाहि दिहि आधार जग, विस्तारत हैं भाम ।।

गनेस

लंबोदर, हेरंब पुनि, द्वैमातुर, एकदंत ।
मूषक-वाहन, गज-वदन, गनपति, गिरिजा-तंत ॥
कोटि बिनाइक जो लिखैं, महि से कागद कोट ।
तौ तेरे पिय-गुनन कौ, गनत न आवै टोट ॥

धूर्त (राधा-वचन)

ब्याजी, बंचक, कुटिल, सठ, छद्मी, धूर्त्त, छली जु ।
कपटी कान्हर कुंवर कौ, केती कहति भली जु ॥

मृग (सखी-वचन)

ऐन, हरिन, वातय, पृषद, हरि, सारँग पुनि आहि ।
मृग, कुरंग से दृग लिये, वलि थोरी इतराहि ॥

पाप

ऐन, वृजिन, दुष्कृत, दुरित, अघ, मलीन, मसि, पंक ।
किल्विष, कल्मष, कलुष पुनि, कस्मल, समल, कलंक ॥
पाप-महावन दहन-दव, जाकौ रंचक नाम ।
ताकौं तू कपटी कहै, तोहिं कहा कहौं भाम ॥

पाषान

ग्राव, अस्म, प्रस्तर, उपल, सिला, पखान, सु भार ।
पानी पर पाहन तरे, जाके नाम अधार ॥

नौका

उडुप, पोत, नौका, पलव, तरि, बहित्र, जलजान।
नाम-नाव चढ़ि भव-उदधि, केते तरे अजान॥ २६०

रुधिर

शोनित, लोहित, रक्त पुनि, रुधिर, असृज, क्षतजात।
लोहू पीवत पूतना, पूत भई छ्वै गात॥

राच्छस

कौनप, असप, पुन्यजन, निकषासुत, दुर्नाद।
कर्बुर, असुर, निसाचरा, जातुधान क्रव्याद॥
अघ ते राच्छस पातकी, मैं देखी गति होति। २६५
उलटि समानी पाँय मैं, परगट ताकी जोति॥

धूरि

धूरि, धूसरी, रेह, रज, पांसु, सरकरा, मंद।
जा पद-पंकज-रेनु कौं, वांछत सनक सनंद॥

महादेव

गंगाधर हर, सूलधर, ससिधर, संकर, वाम।
सर्व, संभु, सिव, भीम, भव, भर्ग, कामरिपु नाम॥ २७०
त्रिनयन, त्र्यंबक, त्रिपुरअरि, ईस, उमापति होइ।
जटी, पिनाकी, धूर्जटी, रुद्र, वृषध्वज सोइ॥
महादेव से देव अनि, जाकौ धारत ध्यान।
ताकौं तू कपटी कहति, यह धौं कौन सयान॥

सूर्य

देव, दिवाकर, विभाकर, दिनकर, भास्कर, हंस।
मिहिर, तिमिरहर, प्रभाकर, विवस्वान, तिग्मंस ॥
ब्रध्न, विरोचन, बिभावसु, मारतंड, त्रय अंग।
अंबर-मनि, दिनमनि, तरनि, सविता, सूर, पतंग ॥
रबि-मंडल मंडन नवल, कहत सु मुनिगन जाहि।
सो यह नागर नंद कौ, क्यौ कपटी वलि आहि ॥

मिथ्या

मिथ्या, मोघ, मृषा, अनृत, बितथ, अलीक निरथ्थ।
ऐसैं पिय सौ झूँठ वलि, क्यौ बोलियै विरथ्थ ॥

निकट (राधा-वचन)

निकट, पार्स्व, अविदूर, तट, उपसमीप अभ्यास।
अवसि अनादर होइ जौ, रहै निरंतर पास ॥

चंदन

गंधसार श्रीखंड, हरि, मलयज, भद्र, पटीर।
चंदन कौ इँधन करत, मलया वासी भीर ॥

मीन

सफरी, अनमिप, मत्स, तिमि, प्रथु, रोमा, पाठीन।
मकर, उलूपी, अंडभव, वैसारिन, झख, मीन ॥
छीर समुद के नीरचर, रहत चंद ढिंग आहि।
चंदहि मंद न जानही, जलचर मानत ताहि ॥

समुद्र (सखी-वचन)

सिंधु, सरितपति, सलिलपति, अंभोनिधि, कूपार ।
जलधाम, अर्णव, उदधि, कौस्तुभ-अवधि, अपार ॥
रत्नाकर मूल-रूप कौं, सुंदर गिरिधर पीय ।
निधि मिलि प्रेम कलोलियै, यौं न बोलियै तीय ॥

मर्कट (सखा-वचन)

कपि, साखामृग, वलीमुख, कीस, प्लवंग, लँगूर । २९५
वानर पर नर नारियर, कियौ विधाता कूर ॥

[illegible]

रोहिनेय, हलभद्र, बल, संकर्षन, बलराम ।
नीलांबर, रेवति-रमन, मुसली, पालक काम ॥
अब रसिक जो चुप रहै, तिन बैठी जिय लेति ।
हरि हलधर के वीर कौं, किनी बड़ाई देति ॥ ३००

पृथ्वी (सखी-वचन)

पृथ्वी, छिति, छोनी, छमा, धरनी, धात्री, गाइ ।
उर्वी, जगती, वसुमती, वसुधा, सर्व-सहाइ ॥
अचला, विपुला, सागरा, धरा उर्वरा होइ ।
[illegible], अवनी, कुंभिनी, मही, मेदनी सोइ ॥
विश्वंभरा, वसुंधरा, थिरा, काश्यपी, आहि । ३०५
रसा, अनंता, भू, इला, थिरा कहत पुनि ताहि ॥

सबधर जिहि इक सीस पर, सोभित ज्यौ कन हीर।
क्यौ आवै तुव आँखि तर, ता हलधर को बीर ॥

बान

तोमर, खग, जिह्मग, असुग, बिसिख, सिलीमुख, बान।
सर, मार्गन, नाराच, इषु, पत्री, शोपन-आन ॥
साइक घाइ पिराइ पुनि, सिमिटि सरीर मिलाइ।
वचन-नीर की पीर बलि, मिटै न जो जुग जाइ ॥

अग्नि

पावक, वन्हि, दहन, जलन, सिखी, धनंजय, होइ।
शुक्र, उपर्बुध, पवनसुख, बीतहोत्र पुनि सोइ ॥
जातवेद, जलजोति-हर, चित्रभान, बृहभान।
अनल, हुतासन, बिभावसु, निर्जरजीह, कृशान ॥
अग्नि-दग्ध जे द्रुम-लता, फिरि फूलत, फल देत।
वचन-दग्ध जिनके हिये, बहुरि न अंकुर लेत ॥

मूर्ख (राधा-वचन)

मुग्ध, मंद, जड, मूढ नर, अग्य, कटुकवद, संठ।
मूरख जन जानै कहा, मनि जैसै कपि-कंठ ॥

चतुर (सखी-वचन)

कृती, कुशल, कोविद, निपुन, छन, प्रवीन, निस्नात।
पटु, विदग्ध, नागर, चतुर, जानत रस की बात ॥

अपराध

अघ, अपराध, दूषन अहिन, औगुन होइ जु पीय।
कृत छांड़ जिमि राखियै, यौं न भाखियै नीय॥

प्रेम

हार्द, स्नेह, प्रियता बहुरि, प्रनय, राग, अनुराग।
मित सौं तेरौ प्रेम अलि, हे भामिनि ! बड़भाग॥

पर्वत

अग, नग, भूभृत, धराभृत, शृंगी, शिखरी होइ।
शैल, शिलोच्चय, गोत्र, हरि, अचल, अद्रि पुनि सोइ॥
गिरि गोवर्धन बाम कर, धरयौ स्याम अभिराम।
तव उर तैं वह धकधकी, अब लौं मिटी न बाम॥

पन्नग

पन्नग, नाग, भुजग, उरग, जिह्मग, भोगी, सर्प।
चक्षुश्रवा, हरि, दरीश्वर, काकोदर, गरदर्प॥
आसीविष, विषधर, फनी, मनी, बिलेसय, व्याल।
चक्री, दर्वी, गूढ़पद, लेलिह केवल काल॥
ज्यौं अहि गगन गमै, मैं गह्यौ गहि बाँह।
नंदनंदन पिय प्रेम उरग, पन्नग हुतौ वह माह॥

पीड़ा

व्यथा, विपत्ति, विथा, रुज, पीड़ा, आरति, ग्लानि।
जब तें नंदनंदन बिन, तिन सौंपी यह हानि॥

असुर

दानव, दनुज सु दैत्य पुनि, सुररिपु निपट असंत ।
माया रूपी रैनि-चर, डोलत असुर अनंत ॥

संध्या

संध्या, निसिमुख, पितृप्रसु, सायंकाल प्रदोष ।
साँझ परी है चलहु बलि, जिनि करि इतनौ रोष ॥

वन

कानन, विपिन, अरन्य, वन, गहन, कच्छ, कानार ।
अटवी मैं उकले दई !, मोहन नंदकुमार ॥

विस

गरल, हलाहल, गर बहुरि, कालकूट, रसमार ।
रस मैं विस जिनि घोरि बलि, चलि अब न करि अवार ॥

पपीहा

कालकंठ, दात्यूह, हरि, चातक, सारँग नाँउ ।
घन सौं रूठि पपीहरा, नहिन बनै बलि जाँउ ॥

जामिनी

छनदा, छपा, तमस्विनी, तमी, तमिस्रा होइ ।
निसि, सर्वरी, विभावरी, रात्रि, त्रिजामा सोइ ॥
सुखद सुहाई सरद की, कैसी जामिनि जाति ।
चलि बलि मोहनलाल पैं, कित बैठी अनखाति ॥

आकाश

अभ्र, पुष्कर, नभ, वियत, अंतरिच्छ, घनवास ।
व्योम, अनंत, विहायसी, ख, सुरवर्त्म, अकास ॥
गगन जु उडगन अमि रहे, नैंक चहा तजि रोस । ३५५
देखन तेरी रूप जनु, सुरतिय किये झरोख ॥

नख

कररुह, पुनर्भव, नखर, नख, हे रँग-भीनी भाम ! ।
रुख कौं छिनिहि जु नखनि बलि, नहि कछु नख सौं काम ॥

सूक्ष्म

सूक्ष्म, अल्प, लव, सूछम, तनु, निपट कृसोदर तोर ।
कहि बलि एतौ मान नचि, राख्यौ है किहि ठौर ॥ ३६०

संग्राम

आयोधन, रन, आजि, मृध, आहव, संख्य, समीक ।
संग्राम, संगर, समर, संजुग, कलह, अनीक ॥
सुरति-जुद्ध जब पीय सौं, तोहि बनैगी बाम ।
तब नागरन बिन कुंवरि, करिहै कहा प्रनाम ॥

मकरी

लूता, मकरा, मर्कटी, उर्णनाभि, पुनि होइ । ३६५
मन गहैं मकरी गुन करी, मकरी विद्या सोइ ॥

मग

वर्तम, अध्वा, सरनि, पथ, संचर, पाद-बिहार ।
मग देखत ह्वैहै दई ! आतुर नंद-कुमार ॥

कृपा

माया, दया, कृपा, घृना, अनुकंपा, अनुक्रोस ।
करुना करि करुनानिधे, राधे जिनि करि रोस ॥

कृपान

रिष्ट, कुसेय, कृपान, असि, मंडलाग्र, करवाल ।
खर्ग जितौ तेतौ कहा, घाउ करन कह्यौ बाल ॥

दिसा

कन्या, काष्टा, ककुभ, दिसि, गो, आसा, इहि ओर ।
कब के चितवत है दई ! नागर नंदकिसोर ॥

नदी

सरिता, धुनी, तरंगिनी, तटिनी, हृदनी, होइ ।
स्रोतस्वती, सु निम्नगा, अपग, बिरेफा सोइ ॥
सैवलिनी, स्रोतस्विनी, द्वीपावति, जल-माल ।
नदी नही कोउ बाट मै, सोच कहा है बाल ॥

पिता

तात, जनक, सबिता, पिता, बबा तोर गुन-धाम ।
तोहि पहिले नँदलाल कौ, देत हुतौ हे बाम ॥

निवास

धाम्न, निकेतन, परिगृह, उटज, विदित निवास ।
मालति परी जु भ्रमी नहिं, कुंज देखी उहि वास ॥

मदिरा (मद्य-पान)

मधु, माध्वीक, मदिरा, सिधु, सुरा, वारुनी होय ।
आसव, मद, कादंबरी, हलिप्रिया, मैरेय ॥
मिरा, प्रसन्ना, शुंडिका, हाला, विधु-प्रसूति । २८५
मद पीयें ज्यों मत्त होइ, कहा कहति है स्रुति ॥

सुभाउ (स्वभाव-वचन)

प्रकृति, निसर्ग, धनिज, सहज, निज सुसील सुभाउ ।
कमल नैन ऐसौ परौ, सुंदर सरल सुभाउ ॥

अंधकार

अंधकार, तम, ध्वांत पुनि, तिमिर सघन अंधार ।
सो हरि देख्यो कुंजनि, सो मन होत अँध्यार ॥ २९०

विटप

साखि, विटपी, अनोकह, तरु, द्रुम, पादप होइ ।
अगी, नगी, फली, नगहि, रूंख, महीरुह सोइ ॥
कल्पतरु तहँ सकल सौं, नंद के निरखत धाम ।
तदपि न सेवक जग कहूँ, उपजत निरखत लोग ॥

पत्र

पत्र, पर्न, दल, छदन, छद, खरकत जव तरु पात ।
तुव आगम भ्रम चौंकि पिय, उठि उठि उत लौं जात ॥

पवन

श्वसन, सदागति, मरुत, हरि, मारुत, जगत परान ।
अनिल, प्रभंजन, गंधवह, नभस्वान, पवमान ॥
तुव तन परिमल परसि जव, गमनत धीर समीर ।
ताकौं बहु सनमान करि, परिरंभत वलवीर ॥

सब्द

नाद, निनद, निस्वन्न, सब्द, सुखर, मुखर, रव, राउ ।
वै बंसी मैं कहत पिय, हे प्रानेस्वरि आउ ॥

आग्या

वय, आदेस, निदेस पुनि, आग्या, सासन जोग ।
आयसु है अब जाउँ फिरि, लहैं सु प्रीतम लोग ॥

अति

अतिसय, भ्रस, अतिवेल, अल, अधिक, अत्यंत, अनंत ।
अति सर्वत्र भली नहीं, कहि गये संत अनंत ॥

समूह

निकर, प्रकर, निकुरंब, व्रज, पूर, पूग, चय, व्यूह ।
कंदल, जाल, कलाप, कुल, निवह, निचय, समूह ॥

चक्र, अनंत, कदंब, गन, ग्राम, तोम वह वृंद ।
मैं अनेक बातैं कही, भई तऊ की बुंद ॥ ४१०

अल्प

दर, स्तोक, ईषद, अलप, रंचक, मंद, मनाक ।
तब पिय-सहचरि तन चितै, मुसकी कुँवरि तनाक ॥

दुःख

कादन, विधुर, संकट, तुदन, दहन, वृजिन पुनि आहि ।
दुख जनि दै अब जान दै, कत बैठी अनखाहि ॥

अर्द्धरात्रि (राधा-वचन)

निसि,निसीथ पुनि महानिसि, होन लगी अधरात । ४१५
सोवौ चलै, सखि सोइ रहि, जैहै उठि परभात ॥

वज्र (सखी-वचन)

असनि, कुलिस,निर्घात,पवि, वज्र सु तेरे नाहि ।
परे तुरे के धाम पर, विघ्न करै रस माहि ॥

लज्जा

ह्री, व्रीडा, लज्जा, त्रपा, सकुच न करि बिन काज ।
चलि अलि प्यारे पियहि मिलि, औषधि खात न लाज ॥ ४२०

पादत्राण

पादत्रान, उपानहा, पादपीठ मृदु भाइ ।
पनही मनही भावती, आगे धरी बनाइ ॥

उच्चधाम

सौध, हर्म्य, प्रासाद तैं, चली जु तिय गति मंद।
सोभित मुख, जनु गगन तैं, अवनी उतरत चंद॥

चंद्रिका

जोतिस्ना पुनि कौमुदी, बहुरि चंद्रिका नाँउ।
जोन्ह सी पसरति वदन तैं, थोरी हँसि, बलि जाँउ॥

वीथी

पुन्य, प्रतोली, वीथिका, रथ्या कहियै नाहि।
इहि वीथी चलि, जाउँ बलि, निपट निकट पिय आहि॥

बाग

कृत्रिम वन उद्यान पुनि, उपवन सोइ आराम।
यह वृंदावन बाग तुव, दिखि बलि छवि कौ धाम॥

वसंत

कुसुमाकर, रितुराज, मधु, माधव, सुरभि, वसंत।
माली जिमि जुगवत सदा, यातैं अधिक लसंत॥

खग

द्विज, संकुत, पंछी, सकुनि, अंडज, विहग, विहंग।
बियग, पतत्री, पत्ररथ, पत्री, पतग, पतंग॥
रटत विहंगम, रँग भरे, कोमल कंठ सु जात।
जनु तुव आगम मुदित द्रुम, करत परस्पर बात॥

पीपल

चलदल, पीपल, गजअसन, बोधि-वृच्छ, अस्वत्थ ।
पीपल देवनि दाहिने, जोरि हत्थ धरि मत्थ ॥

पाडर

थाली, पाटलि, फलरुहा, स्यामा, वामा नाम ।
अंबुवास, मधुदूति यह, पाडर करति प्रनाम ॥ ४४०

आम

पिक-वल्लभ, कामाग पुनि, मदिरा-सख, सहकार ।
यह रसाल की डार वलि, नै जु रही फलभार ॥

चंपा

चांपेय, चंपक, सुरभि, हेमपुष्प सुकुमार ।
यह चंपा पा परनि वलि, लिये पुहुप उपहार ॥

मधूक

माधव, मधुद्रुम, मधुश्रुवा, मधुष्ठील, गुडफूल । ४४५
या मधूक के फूल वलि, कछु तुव गंडन तूल ॥

दाड़िम

रक्तबीज, मानिक, करक, सुक-प्रिय, कुन्टिम, सार ।
ये दाड़िम इत देखि वलि, कछु तुव दसन अकार ॥

कदली

रंभा, मोचा, गजवना, भानुफला सुकुमार ।
ये कदली तिन मैं कछू, तव ऊरू उनहार ॥ ४५०

वेल

सुरभि, सिलूखी, सदाफल, ताल, बिल्व, मालूर।
ये श्रीफल तुव कुचन सम, कहत वहुत कवि कूर॥

तमाल

कालकंध, तापिच्छ पुनि, तिंदुक सहज तमाल।
वैठे हे जहँ काल्हि बलि, तुम अरु मोहनलाल॥

कदंब

नीप, तूल, प्रीयक बहुरि, मदिरा-गंध सु बाह।
यह कदंब वलि कान्ह जिहि, चढ़ि कूदे दह माह॥

पलास

बातपोथ पुनि ब्रह्मद्रुम, किसुक, पर्न, पलास।
केसू विरही जनन कौ, नाहर नहन बिलास॥

बहेरा

अक्ष, विभीतक, कर्षफल, सवर्तक, कलिबृक्ष।
भूताबास वहेर तरु, जिनि चलियै मृग-अक्ष॥

नारियर

बानरमुख, लागूल पुनि, नारिकेल सुभकाम।
अहो नारि वर नारियर, बलि तोहि करत प्रनाम॥

सुपारी

घोंटा, क्रमुक, गुवाक पुनि, पूग, सुपारी आहि।
वारी वारी कहत बलि, रंचक इन तन चाहि॥

कौंछ

कोलिवल्लिका, कपिलता, विसर, श्रेयसी नांउ।
कंडु करति यह अंग में, कौंछ न छू, बलि जांउ॥

मरिच

निफ्ला, ऊषना, कोलका, कृष्नफला पुनि नांउ।
मरिच लता पां परि कहति, भली करी बलि जांउ॥

पीपरि

कोला, कृष्ना, मागधी, तिग्म, तंदुला होइ।
वैदेही, स्यामा, कना, सुंडी कहियै सोइ॥
यह पीपरि बलि पग गहै, कहति बहुत परकार।
अब तै इतनौं करि कुंवरि, प्रीतम प्रान-अधार॥

हर्रा

अभया, पथ्या, अव्यथा, अमृता, चेतकि होइ।
कायस्था पुनि पूतना, सिवा श्रेयसी सोइ॥
यह हरीतकी पग गहति, हरति उदर के रोग।
ज्यौं तू गिरिधर लाल के, बाल सकल सुख जोग॥

सोंठ

विस्वा, नागर, जगभिषक, महा औषधी नांउ।
यह सुंठी स्तुति पगन नर, कहत कि बलि बलि जांउ॥

अनेकार्थमंजरी

जु प्रभु जोति-मय, जगत-मय, कारन, करन, अभेव।
विघन-हरन, सब सुभ-करन, नमो नमो तिहि देव॥
एकै वस्तु अनेक ह्वै, जगमगात जग-धाम।
जिमि कंचन तैं किंकिनी, कंकन, कुंडल नाम॥
उचरि सकत नहिं संसकृत, अरु समुझन असमर्थ।
तिन हित 'नंद' सुमति जथा, भाख्यौ 'अनेका अर्थ'॥

गो

गो इंद्री, दिव, बाक, जल, स्वर्ग, वज्र, खग, छंद।
गो धर, गो तरु, गो किरन, गो-पालक गोविंद॥

सुरभी

सुरभी चंदन, सुरभि मृग, सुरभी बहुरि बसंत।
सुरभी चारत वन सुने, जो जग कमला-कंत॥

मधु

मधु बसंत, मधु चैत्र, नभ, मधु मदिरा मकरंद।
मधु जल, मधु पय, मधु सुधा, मधुसूदन गोविंद॥

कलि

कलि कलेस, कलि सूरमा, कलि निखंग, संग्राम।
कलि कलिजुग तहँ अवर नहि, केवल केसव नाम॥

आत्मा

मन बुधि चित्त सुभाउ तन, धर्म जीउ अहँकार ।
ये सब कहियँ आतमा, परमात्मा आधार ॥

धनंजय

अग्नि धनंजय कहत कवि, पवन धनंजय आहि ।
अर्जुन कहुरयौ धनंजय, कृष्न सारथी जाहि ॥

अर्जुन

अर्जुन द्रुम, अर्जुन धवल, सहस्राअर्जुन अथ्य ।
अर्जुन मद्धिम पंडु सुत, हरि खेले जिहि सथ्य ॥

पत्र

पत्र पतन, औ पत्र रथ, वाहन पत्र सुचित्त ।
पत्र पंत्र लिखि नहि दये, उड़ि मिलिते हरि मित्त ॥

पत्री

पत्री नख, पत्री कमल, पत्री बहुरि विहंग ।
पत्री नर कर चित्त जिमि, उमि सेवहु श्री रंग ॥

बर्ही

बर्ही द्रुम, बर्ही अगिनि, बर्ही कुक्कुट नाम ।
बर्ही मोर किसोर के, चंद धरे सिर स्याम ॥

धाम

धाम मेह औ धाम तन, धाम किरन, गृह धाम ।
धाम जोति जो ब्रह्म की, घनीभूत हरि स्याम ॥

काम

काम भोग, अभिलाष पुनि, मनमथ कहियै काम ।
काम काज जिनि भूलि मन, भजि लै हरि अभिराम ।।

वाम

वाम कुटिल अरु वाम सिव, वाम काम कर वाम ।
वाम मनोहर कौं कहत, जैसैं सुदर स्याम ।।

भव

भव संकर, संसार भव, भव कहिये कल्यान ।
भव जु जन्म जग सुफल तब, जब भजियै भगवान ।।

क

कं सुख, कं जल, कं अनल, कं सिर, कं पुनि काम ।
कं कंचन सौ प्रीति जस, अस करि रे हरि नाम ।।

खं

खं नभ, खं गृह, खं नखत, खं रंध्रन कौ नाम ।
खं इद्री दुख देति है, दया करौ घनस्याम ।।

कल्प

कल्प जु बिधि दिव, कल्प सम, कल्प समर्थ जु कोइ ।
कल्प कपट तजि हरि भजौ, कल्पबृच्छ सम सोइ ।।

कर

कर गज-पुष्कर, हस्त कर, कर जु किरन, कर दान ।
कर बिष सम तजि बिषय मन, भजि हरि अमी निधान ।।

दर

दर जु कहत कवि संख कौं, दर ईषद कौ नाम।
दर उर तैं टारहु कुँवरि, गिरिधर सुंदर स्याम॥

बर

बर सुंदर, बर श्रेष्ठ पुनि, बर जु देवता देत।
बर दूलह से स्याम निज, ब्रज तिय हिय हरि लेत॥

वृष

वृष सुरपति, वृष कर्न पुनि, वृष जु वृषभ, वृष काम।
वृष जु धर्म करि हरि भजौ, जौ चाहौ सुख धाम॥

पतंग

तरनि पतंग, पतंग खग, पावक बहुरि पतंग।
सब जग रंग पतंग कौ, हरि एकै नवरंग॥

बर्ह

बर्ह कहिं नृप कौ कटक, बर्ह पत्र कौ नाम।
बर्ह बर्हीं के चंद सिर, धरे स्याम अभिराम॥

पल

पल आमिष कौं कहत कवि, षट उसास पल होइ।
पल जु स्वपच, हरि बिन पचै, जोगिन जुग सत सोइ॥

बल

बल पौरुष, बीरज बहुरि, बल नृपनन्दन कौ नाम।
बल साहस, बल दैत पुनि, बल कहियँ बलराम॥

अल

अल अत्यर्थ, समर्थ अल, अल पूरन को नाम ।
अल अभरन,अल अलस तजि, भजि मनमोहन स्याम ॥

वय

वय विहग कौं कहत कवि, व्रय कहियै पुनि काल ।
वय जु वहिक्रम जाति है, भजि लै मदन गुपाल ॥

जीव

जीव वृहस्पति कौं कहत, जीव कहावत चंद ।
जीव आत्मा नित जियै, जिय के जिय नँद-नंद ॥

मार

मार मृतक, विख मार पुनि, मार कहावै काम ।
मार अमृत हूँ तैं सरस, सुंदर गिरिवर स्याम ॥

सार

सार वीज, धीरज, धरम, सार वज्र, घृत सार ।
सार सवन कौ साँवरो, मही परचौ संसार ॥

कलभ

कलभ कहत करि-सावकहि, कलभ वहुरि उत्ताल ।
कलभ कलुप कलिकाल तैं, काढहु कृष्न कृपाल ॥

नभ

नभ आश्रय, नभ भाद्रपद, नभ सावन कौ मास ।
नभ अकास, नभ निकट ही, घट-घट रमानिवास ॥

वसु

अष्ट अमर वसु, वन्हि वसु, वसु जु किरन, वसु नीर ।
वसु धन जग में सो धनी, धन जाके बलबीर ॥

पटु

पटु तीछन को कहत कवि, पटु आरोग्य कहंत ।
पटु प्रवीन सो जगत में, रमै जु रुकमिनि-कंत ॥

तुरंग, कुरंग

गरुड़ तुरंग, तुरंग मन, बहुरि तुरंग तुरंग ।
हरिन कुरंग, कुरंग सो, रँग्यो न हरि रस रंग ॥

आत्मज

आत्मज कहियै रुधिर अरु, आत्मज कहियै काम ।
आत्मज पूत सपूत सो, भजै जु सुंदर स्याम ॥

कबंध

बिन सिर कहत कबंध कवि, है कबंध पुनि नीर ।
राच्छस एक कबंध तिहि, हनो गनि रघुबीर ॥

हंस

हंस तुरगम, हंस रवि, हंस मराल सु छंद ।
हंस जीव कहुँ कहत कवि, परम हंस गोविंद ॥

पयोधर, भूधर

मेघ, अर्क, कुच, सैल, द्रुम, ये जु पयोधर आहि ।
भूधर गिरि, भूधर नृपति, भूधर आदि बराहि ॥

वान

वान कहावै वलि-तनय, विसिख आहि पुनि वान।
वान कहत कवि स्वर्ग कहँ, श्री हरि पद निर्वान॥

वरुन

वरुन कहत कवि नीर कहँ, वरुन स्यार कौ नाम।
वरुन हरे जव नंद तव, कैसे वाये स्याम॥

गोत्र

गोत्र नाम कौ कहत कवि, गोत्र सैल सुनियंत।
गोत्र वंस सो धन्य जहँ, गोविंद गुन गुनियंत॥

तनु

तनु सरीर, विस्तार तनु, तनु सूछम, तनु तात।
तनु विरलौ कोउ जगत मैं, जानैं हरि रस वात॥

वाल

वाल सिरोरुह, वाल सिसु, मूक कहावै वाल।
वाल अग्य सोइ जगत मैं, भजै न वाल गुपाल॥

जाल

जाल झरोखा, जाल गन, जाल दंभ अरु मंद।
जाल भगर-विद्या जगत, दिखि न भूलि नँद-नंद॥

काल

काल असित, अरु काल वय, धर्मराज पुनि काल।
काल व्याल के काल हरि, मोहन मदन गुपाल॥

ताल

ताल नाल, हरिताल पुनि, द्विभुजास्फालन ताल।
ताल वृच्छ फल खाइ कैं, दैत्य हत्यौ नँदलाल॥ १००

व्याल

व्याल क्रूर नर, व्याल गज, वानर अंत जु व्याल।
व्याल सर्प सिर चढ़ि नचैं, नटवर वपु नँदलाल॥

जलज

जलज मीन, मोती जलज, जलज संख अरु चंद।
जलज जु कमल फिरावतैं, ब्रज आवत नँद-नंद॥

गुन

गुन राजस, गुन सूत्र पुनि, गुन कोदंड कौ जेह। १०५
गुन चरित्र गोबिंद के, गावहु हिय भरि नेह॥

तम

तम तामस गुन, राहु तम, तम जु तिमिर, तम क्रोध।
तम अग्यानहि हरहु हरि, उर धरि दीप प्रबोध॥

अवि

अवि परवत, अवि मेष पुनि, अवि सविता कौ नाम।
अविरच्छक सब जगत कौ, एकै सुंदर स्याम॥ ११०

बन

बन माली सौं कहत कवि, बन बारिद कौ जाल।
बन कानन तैं सुरभि सँग, आवत मदन गुपाल॥

घन

घन दिढ़, घन विस्तार पुनि, घन जिहिं गढत लुहार।
घन अंबुद, घन सघन अरु, चिदघन नंदकुमार॥

वरन

वरन स्तुति, अच्छर वरन, वरन द्विजादिक चारि।
वरन अरुन, सित, पीत हूँ, अबरन एक मुरारि॥

पोत

पोत कहावै निपट सिसु, पोत जु पत्र अनूप।
पोत नाउ जग-जलधि मैं, कृष्न नाम सुख रूप॥

बुध

बुध पंडित कौ कहत कबि, बुध ससि-सुवन बखान।
बुध हरि कौ अवतार इक, बोध भयौ जिहिं ग्यान॥

अनंत

गगन अनंत कहंत कवि, वहुरि अनंत अनेक।
सेस अनंत कहंत बुध, हरि अनंत अरु एक॥

छय

छय निवास कौ कहत कबि, छय कहियै छय रोग।
छय परलै मधि हरि विषै, लीन होत सब लोग॥

राजिव

राजिव ससि, राजिव सलिल, राजिव मुक्ता, मीन।
राजिव नाभि गुबिद की, जहँ बिधि से अलि लीन॥

लोक

लोक व्याकरन, लोक जन, लोक देह रसमूलि।
तीनि लोक गुन उदर लखि, रही जगोमति भूलि॥

सुक्र

सुक्र बीजं, अरु अगिनि पुनि, सुक्र जेठ कौ मास।
सुक्र अजहुँ बावनहि प्रति, बलि हित भरत उसास॥

खग

खग रवि, खग ससि, खग पवन, खग अंबुद, खग देव।
खग बिहंग हरि-सुतरु भजि, तजि जड़ सेमर सेव॥

ब्रह्म

ब्रह्म ब्रह्म कुल, ब्रह्म बिधि, ब्रह्म बेद अरु जीव।
ब्रह्म नंद के सदन में, ताहि नचावति तीय॥

कलाप

गुन कलाप, तूनीर पुनि, अभरन आहि कलाप।
बरही-चंद कलाप पुनि, हरि बिनु जीव कलाप॥

उड़, उड़प

उड़ बिहंग, उड़ नखत गन, उड़ कैवर्तक आहि।
उड़प चंद, नौका उड़प, उड़प गरुड़ बर वाहि॥

मंद

मंद सनीचर, मंद खल, मंद अल्प, अघ मंद।
मंद मूढ़ नर ते जगत, जे न भजै नँदनंद॥

विरोचन

बन्हि विरोचन, सूर्ज पुनि, चंद विरोचन गात।
दैत्य विरोचन धन्य सो, जाके वलि सौ तात॥

वलि

वलि लहरी, वलि जूगरी, वलि भोजन वलि भाग।
वलि राजा की जाउँ वलि, जा हिय हरि अनुराग॥

वृक

वृक पावक कौ कहत कवि, वृक भिड़हा कौ नाम।
वृक दानव दलि, देव सिव, राखे सुंदर स्याम॥

रज

रज राजस, आरक्त रज, रज जुवती मैं होइ।
रज धूली, रज पाप कौ, हरि निर्मल जल धोइ॥

कुस

कुस सीता-सुत, दर्भ कुस, कुस कहियै पुनि नीर।
कुस दानव दलि द्वारिका, जहाँ वसे वलवीर॥

कंबु, भुवन

कंबु संख औ कंबु गज, कंबु इष्ट कौ नाम।
भुवन गगन, औ भुवन जल, त्रिभुवन-नाइक स्याम॥

कूट

कूट बहुत, अरु कूट गिरि, अहरनि कूट कहंत।
कूट कपट कौ निपट तजि, भजि लै मन भगवंत॥

खर

खर राच्छस, खर स्वान खर, खर तीछन कौ नाम ।
खर गदहा सम ते जगत, जे न भजैं हरि स्याम ॥

कुज, जग

कुज मंगल, कुज अस्त, द्रुम, कुज भौमासुर नाम । १८५
जग जुग, जम जमराज तैं, राखहु सुंदर स्याम ॥

हरिनी

हरिनी प्रतिमा हेम की, हरिनी मृग की तीय ।
हरिनी जूथी जासु की, फूल-माल हरि हीय ॥

धात्री

धात्री कहियै आंवरी, धात्री धाइ बखान ।
धात्री धरनी नैन पर, मोहत तिल परमान ॥ १९०

सिवा

सिवा संभु की सुंदरी, सिवा स्यार की भाम ।
सिवा हरड़ जिमि रोग-हर, इमि अघ-हर हरि नाम ॥

रसना

रसना कांची कहत कवि, रसना बहुरौ दाम ।
रसना जिह्वा सौं सुजस, क्यों न लेत हरि नाम ॥

रंभा

रंभा कहियै अपसरा, रंभा कदली नाम । १९५
रंभा गोकुल गाइ-धुनि, जिहि मोहे हरि स्याम ॥

माया

माया छल, माया दया, माया नेह कहंत।
माया मोहनलाल की, जिहि मोहे सब जंत॥

इला

इला मही, बुध-तिय इला, इला उमा अभिराम।
इला सरसुती सो भली, जामैं हरि कौ नाम॥

जोति

जोति नखत गन, जोति दुति, जोति नेत्र अरु आगि।
जोति ब्रह्म सो नंद घर, रह्यौ अनंदहि लागि॥

सुमना

सुमना कहियै मालती, सुमना मुदिता तीय।
सुमना रति, सो कान्ह सौं, करि लै लंपट जीय॥

इडा

इडा कहत नभ देवता, इडा भूमि अभिराम।
इडा अंबिका मातु मोहिं, रति दीजै हरि नाम॥

निसा, अजा

निसा जामिनी कौ कहत, निसा हरिद्रा नाम।
अजा छाग, माया अजा, जिहि मोहे अज, वाम॥

विधि

बिधि बेधा, बिधि दैव पुनि, विधि कहियै जु विधान।
बिधि बिधि जोई हरि रची, सोई विधि परमान॥

जिह्म

जिह्म अन्तर करि चलित नर, जिह्म कहावै मूढ़।
जिह्म कपट तजि हरि भजौ, घट घट परगट गूढ़॥

हस्त

हस्त कहत गज सुंड कौं, हस्त नछत्र सु भाइ।
हस्त हाथ तैं डारि जनि, नर हीरा तन पाइ॥

कृतांत

आगम, सास्त्र कृतान्त सब, पुनि कृतांत सिद्धांत।
जम कृतान्त की त्रास तैं, त्राता कमला-कांत॥

मित्र

मित्र भानु कौं कहत कवि, मित्र अगिनि कौ नाम।
मित्र मीत सब जगत के, एकै सुंदर स्याम॥

सारंग

रवि, ससि, हय, गज, गगन, गिरि, केहरि, कुंज, कुरंग।
चातक, दादुर, दीप, अलि, ये कहियै सारंग॥

हरि

इंद्र, चंद्र, अरविंद, अलि, कपि, केहरि, किरयान।
कनक, काक, तुरंग, दल, धन, कुदंड, नभ, भान॥
बानी, पावक, पवन, पय, गिरि, गज, नाग, नरिन्द।
ये हरि रसनि सुदरसनि, हरि ईस्वर गोविंद॥

ध्रुव

ध्रुव निश्चल, ध्रुव जोग पुनि, ध्रुव जु ध्रुपद, ध्रुवताल ।
ध्रुव तारे जिमि ते अटल, गुनहिं जु गुन गोपाल ॥

सुमनस

सुमनस सुर, सुमनस पुहुप, सुमनस बहुरि बसंत ।
सुमनस ते जिन मन बसै, कोमल कमलाकंत ॥

बिटप

बिटप अंग, पल्लव बिटप, बिटप कहत विस्तार ।
विटप वृच्छ की डार गहि, ठाढ़े नंदकुमार ॥

दान

दान द्विजन कौ दीजियै, गज मद कहियै दान ।
दान साँवरौ लेत बन, गोपी प्रेम निधान ॥

रस

रस नव, रस घृत, रस अमृत, रस विष, अरु रस नीर ।
सब रस कौ रस प्रेम-रस, जाके बस बलबीर ॥

सनेह

तैल सनेह, सनेह घृत, बहुरचौ प्रेम सनेहु ।
सो निज चरनन गिरधरन ! 'नंददास' कौं देहु ॥
जो 'अनेक अर्थहि' सदा, पढ़ै, सुनै नर कोइ ।
सो अनेक अर्थहि लहै, पुनि परमारथ होइ ॥

स्यामसगाई

एक दिन राधे कुँवरि, नंद-घर खेलन आई।
अंचल चौर विचित्र देखि, जसुमति मन भाई॥
नंद-महरि मन मैं कह्यौ, देखि रूप की रास।
यह कन्या मो स्याम कौं, गोविंद पुजवैं आस॥
कि जोरी सोहनी॥

जसुमति महा प्रवीन, एक द्विज-नारि बुलाई।
लीनी निकट बिठाइ, मरम की बात सुनाई॥
जाइ कह्यौ वृषभान सौं, करियौं बहु मनुहारि।
यह कन्या मैं स्याम कौं, माँगौ गोद पसारि॥
कि जोरी सोहनी॥

द्विज-नारी उठि चली, वेगि बरसाने आई।
जहँ राधे की माइ बैठि तहँ बात चलाई॥
जसुमति माँगी नंद सौं, जिन रूठइ तुम मान।
बहुत भाँति बचन कही, बहुतहि करि सनमान॥
कृपा करि दीजियै॥

नीकी राधे कुँवरि, स्याम मेरौ अति नीकौ ।
तुम किरपा करि करौ, लाल मेरे कौ टीकौ ॥
सबै भाँति सुख होइगो, हम-तुम बाढ़ै प्रीति ।
और न कछु मन मैं चहौ, यही जगत की रीति ॥
परस्पर कीजियै ॥

कीरति उत्तर दयौ, सु हौं नहिं करौं सगाई ॥
सूधी राधे कुँवरि, स्याम है अति चरबाई ।
नँद-ढोटा लंगर महा, दधि-माखन कौ चोर ।
कहत-सुनत लज्जा नहीं, करै और तैं और ॥
कि लरिका अचपलौ ॥

द्विज-नारी फिरि आइ, महरि सौं बात कही सब ।
सुनि करि कै करतूति, मनहि मन सोचि रही तब ॥
अतरजामी साँवरौ, तिही बेर गयौ आइ ।
बूझन लाग्यो माइ तैं, क्यौं जु रही सिर नाइ ॥
बात मो सौं कहौ ॥

मैया लाल सौं कहै, पूत ! हौं नाकै आई ।
जहँ करियत तो बात, तहाँ तेरी होति बुराई ॥
मैं पठई वृषभान कैं, करन सगाई तोइ ।
उनहूँ वहि उत्तर दियौ, यातैं चिता मोइ ॥
कहौ कैसी करौं ॥

मैया नैं सुनि बात, कहत यौं नंद-दुलारी।
मोहन कीन्हौ ब्याह, करौ जिनि लाड़ हमारी॥
जौ तुमरे इच्छा कहौ, उन ही कौ हम लैहि।
तौ मैं टीका नंद कौ, पालन परि परि दैहि॥
सोच नहि कीजियै॥

मोरचंद्रिका धारि, सु नटवर भेष बनाई।
बरसाने के बागहि, मोहन बैठे जाइ॥
सब सखियन के झुंड मैं, देखन चली गोपाल।
अरस-परस दोऊ भये, कुँवरि किसोरी लाल॥
मनहि फूले फिरै॥

मन हरि लीनौ स्याम, परी राधे मुरझाई।
भई सिथिल सब देह, बात कछु कही न जाई॥
दौरि सखी कुंजन चली, नैनन डारति नीर।
अरी बीर! कछु जतन करि, हिरदै धरति न धीर॥
हरयौ मनमोहना॥

सखियन ऊँचे बैन कहे, पै कुँवरि न बोलै।
ढुँढ़नि बिबिध प्रकार, लड़ैती नैन न खोलै॥
घरी द्वैक बीती जबै, तब सुधि आई नैंक।
'स्याम! स्याम!' रटिबे लगी, एकहि बार जु ऐंक॥
बदनि ज्यौं बावरी॥

कौन बाइगी, सुनै ताहि, किन मोहिं बतायौ।
परपंचिनि तुम ग्वालि, झूठ ही मोहिं बुलायौ॥
को राजा वृषभान है? कित बरसानौ गाम?।
कौन तुम्हारी-कुँवरि है? हौ जानत नहि नाम॥
कान्ह उत्तर दयौ॥

सुनौ नंद के लाल! साँवरे कुँवर कन्हाई।
बरसानौ वह गाँउ, जहाँ तुम मुरलि बजाई॥
नटवर भेष बनाइ कै, बैठे आसन मारि।
धुनि सुनि मोही राधिका, औ ब्रज की सिग नारि॥
मनौ टौना करचौ॥

अहो महरि के पूत! समौ मुकरन कौ नाही।
जौ न चलौगे बेगि, कुँवरि जीवैगी नाही॥
काली नाग जु नाथियौ, तुम सम और न कोइ।
बृंदाबन मैं साँवरे, कहा सिखावत मोइ॥
बात जानत सबै॥

वह राजा बृषभान, एक ही डोल गढ़ावै।
मोहि राधे बैठारि, सखिन पै झोंटा द्यावै॥
अरथ-द्रब्य च्छा नही, पान-पात नहिं लैउँ।
जौ इतनौ कारज करै, तौ कुँवरि भली करि दैउँ॥
बात एती अहै॥

जो माँगौ सो लेउ, साँवरे कुँवर कन्हैया ।
बिन माँगे ही देहिं, तुम्हें राधा की मैया ॥
यह सुनि सुंदर साँवरे, लीने सखा बुलाइ ।
सिध पौरि वृषभान की, ततछन पहुँचे जाइ ॥
लगन है नेह की ॥

तब रानी उठि दौरि, पौरि तें मोहन लाई ।
सिंघासन बैठाइ, हाथ गहि कुँवरि दिखाई ॥
दरस-फूँक दै विष हर्यौ, निज सनमुख बैठाइ ।
बहु धन वारति है सखी, मुदित कुँवरि की माइ ॥
धन्न है इह घरी ॥

सुनत बचन ततकाल, लड़ैती नैन उघारे ।
निरखत ही घनस्याम, बदन तें केस सँवारे ॥
सब अपने घर निरखि कैं, पुनि निरखी ढिंग माइ ।
अँचरा डार्यौ बदन पै, मन दीनी मुसकाइ ॥
सकुच मन मैं बड़ी ॥

देखि दोउन कौ प्रेम, जु कीरति मन मुसकाई ।
जोरी जुग जुग जियौ, विधाता भली बनाई ॥
सखी रहैं जुरि चित्र सौं पुहुपन तें बनमाल ।
राधे के कर छुवाइ कैं, गर मेल्यौ नँदलाल ॥
बात आछी बनी ॥

सुनत सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले।
नाचत-गावत चले, प्रेम-रस मैं अनुकूले ।।
जसुमति रानी घर सज्यौ, मोतिन चौक पुराइ।
बटत बधाई नंद के, 'नंददास' बलि जाइ ।।
१४० कि जोरी सोहनी ।।



भँवरगीत

ऊधौ कौ उपदेस, सुनौ ब्रजनागरी।
रूप, सील, लावन्य, सबै गुन आगरी॥
प्रेमसुधा, रसरूपिनी, उपजावनि सुख-पुंज।
सुंदर स्याम बिलासिनी, नव वृंदावन-कुंज॥
सुनौ ब्रजनागरी॥

कह्यौ स्याम संदेस एक, मैं तुम पै लायौ।
कहन समै संकेत, कहूँ औसर नहिं पायौ॥
सोचत ही मन मैं रह्यौ, कब पाऊँ इक ठाउँ।
कहि सँदेस नँदलाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाउँ॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥

सुनत स्याम कौ नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सब अँग भये, भरि आये जल नैन।
कंठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन॥
बिवस्था प्रेम की॥

अर्घासन बैठारि, और परिकर्मा दीनी।
स्याम सखा निज जानि, बहुरि सेवा बहु कीनी॥
बूझत सुधि नँदलाल की, विहसित-मुख ब्रजबाल।
नीके हैं बलबीर जू, बोलति बचन रसाल॥
सखा सुनि स्याम के॥

कुसल स्याम अरु राम, कुसल संगी सब उन के।
जदुकुल सगरे कुसल, परम आनंद सबन के॥
बूझन ब्रज-कुसलात कौं, हौं आयौ तुम तीर।
मिलिहैं थोरे द्यौस मैं, जिनि जिय हौहु अधीर॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥

सुनि मोहन-संदेस, रूप सुमिरन ह्वै आयौ।
पुलकित आनन अलक, अग आवेस जनायौ॥
बिह्वल ह्वै धरनी परी, ब्रजबनिता मुरझाइ।
दै जल-छींट प्रबोधही, ऊधौ बात बनाइ॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥

वे तुम तैं नहिं दूरि, ग्यान की आँखिन देखौ।
अखिल बिस्व भरपूरि, ब्रह्म सब रूप बिसेखौ॥
लौह, दारु, पाषान मैं, जल-थल माहिं अकास।
सचर, अचर बरतत सबै, जोति ब्रह्म परकास॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥

कौन ब्रह्म की जोति ? ग्यान कासौं कहौ ऊधौ ?।
हमरे सुंदर स्याम, प्रेम कौ मारग सूधौ ॥
नैन, बैन, श्रुति, नासिका, मोहन-रूप दिखाइ।
सुधि-बुधि सब मुरली हरी, प्रेम-ठगौरी लाइ ॥
सखा सुनि स्याम के ॥

यह सब सगुन उपाधि, रूप निर्गुन है उन कौ।
निरबिकार निर्लेप, लगत नहि तीनौ गुन कौ ॥
हाथ न पाँउ, न नासिका, नैन, बैन, नहिं कान।
अच्युत-जोति प्रकास है, सकल विस्व कौ प्रान ॥
सुनौ व्रजवासिनी ॥

जौ मुख नाहिन हुतौ, कहौ किन माखन खायौ ?।
पाउन बिन गोसंग, कहौ को बन बन धायौ ?॥
आँखिन मैं अंजन दियौ, गोवर्धन लियौ हाथ।
नंद-जसोदा पूत हैं, कुँवर कान्ह ब्रजनाथ ॥
सखा सुनि स्याम के ॥

ताहि कहौ तुम कान्ह, ताहि कोउ पिता न माता।
अखिल अंड ब्रह्मांड, विस्व उन ही तैं जाता ॥
लीला-गुन अवतारि कैं, धरि आये तन स्याम।
जोग-जुगति ही पाइयै, परब्रह्म - पुर - धाम ॥
सुनौ व्रजवासिनी ॥

ताहि बतावहु जोग, जोग ऊधौ जेहि पावौ ।
प्रेम-सहित हम पास, नंद-नंदन-गुन गावौ ।।
नैन, बैन, मन, प्रान मैं, मोहन-गुन भरपूरि ।
प्रेम-पियूषै छाँड़ि कै, कौन समेटै धूरि ।।
सखा सुनि स्याम के ।।

धूरि बुरी जौ होइ, ईस क्यौ सीस चढावै ।
धूरि-छेत्र मै आइ, कर्म करि हरि-पद पावै ।।
धूरिहि तै यह तन भयौ, धूरिहि तै ब्रह्मंड ।
लोक चतुर्दस धूरि तै, सप्त दीप, नव खंड ।।
सुनौ ब्रजबासिनी ।।

कर्म धर्म की बात, कर्म अधिकारी जानै ।
कर्म-धूरि कौ आनि, प्रेम-अमृत मै सानै ।।
तब ही लौ सब कर्म है, जब लौ हरि उर नाहि ।
कर्मबंध सब बिस्व के, जीव बिमुख ह्वै जाहि ।।
सखा सुनि स्याम के ।।

कर्महि निंदौ कहा, कर्म तै सदगति होई ।
कर्म रूप तै बली, नाहि त्रिभुवन मै कोई ।।
कर्महि तैं उतपत्ति है, कर्महि तै है नास ।
कर्म किये तै मुक्ति है, परब्रह्म-पुर बास ।।
सुनौ ब्रजबासिनी ।।

कर्म पाप अरु पुन्य, लोह सोने की बेरी।
पाइन बंधन दोउ, कोउ मानौ बहुतेरी॥
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है, नीच कर्म तें भोग।
प्रेम बिना सब पचि मरे, बिषय-बासना-रोग॥
सखा सुनि स्याम के॥

कर्म बुरे जो होहिं, जोग काहे कोउ धारै।
पद्मासन नव द्वार रोकि, इंद्रिन कौं मारै॥
ब्रह्म-अग्नि जरि सुद्ध ह्वै, सिद्धि-समाधि लगाइ।
लीन होइ सायुज्य में, जोतिहि जोति समाइ॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥

जोगी जोतिहि भजै, भक्त निज रूपहि जानैं।
प्रेम-पियूषै प्रगट, स्यामसुंदर उर आनैं॥
निर्गुन गुन जो पाइयै, लोग कहैं यह नाहिं।
घर आयौ नाग न पूजहीं, बाँबी पूजन जाहिं॥
सखा सुनि स्याम के॥

जो उन के गुन होहिं, वेद क्यों नेति बतावैं।
निर्गुन सगुन आतमा, रचि उपनिषद जु गावैं॥
वेद-पुरानन खोजि कैं, नहिं पायौ गुन एक।
गुन हू के गुन होहिं जौ, कहौ अकास किहिं टेक॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥

जो उन के गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ तें।
बीज बिना तरु जमै, मोहि तुम कहौ कहाँ तें ॥
वा गुन की परछाँह री, माया-दर्पन बीच।
गुन तें गुन न्यारे भये, अमल वारि मिलि कीच ॥
सखा सुनि स्याम के ॥

माया के गुन और, और हरि के गुन जानौ।
वा गुन कौ इन माँझ, आनि काहे कौं सानौ ॥
जाके गुन अरु रूप कौ, जानि न पायौ भेद।
तातैं निर्गुन ब्रह्म कौं, बदत उपनिषद-वेद ॥
सुनौ ब्रजनागरी ॥

बेदहु हरि के रूप, स्वास मुख तै जो निसरै।
कर्म, क्रिया, आसक्तिं, सबै पिछली सुधि बिसरै ॥
कर्म-मध्य ढूंढै सबै, किनहुँ न पायौ देख।
कर्म-रहित ही पाइयै, तातैं प्रेम बिसेख ॥
सखा सुनि स्याम के ॥

प्रेमहि कोऊ बस्तु-रूप, देखत लौ लागै।
बस्तु-दृष्टि बिन कहौ, कहा प्रेमी अनुरागै ॥
तरनि चंद्र के रूप कौ, गुन नहि पायौ जान।
तौ उन कौ कहा जानियै, गुनातीत भगवान ॥
सुनौ ब्रजबासिनी ॥

नैननि अकास प्रकास, तेजमय रह्यौ दुराई।
दिव्य-दृष्टि बिन कहौ, कौन पै देख्यौ जाई॥
जिन के वे आँखें नहीं, क्यौं देखैं वह रूप।
तिन्हैं बिस्वास क्यौं ऊपजै, परे कर्म के कूप॥
सखा सुनि स्याम के॥

जब करियैं नित-कर्म, भक्ति हू तामैं आई।
कर्म रूप तैं कहौ, कौन पै छूट्यौ जाई॥
कारन करम कर्मँहि किये, कर्म नास ह्वै जाहि।
तब आतम निहकर्म ह्वै, निर्गुन ब्रह्म समाहि॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥

जौ हरि के नहि कर्म, कर्म बंधन ह्वै आवै।
तौ निर्गुन ह्वै वस्तु-मात्र, परमान बतावै॥
जौ उन के परमान है, तौ प्रभुता कछु नाहि।
निर्गुन भये अतीत के, सगुन सकल जग माहि॥
सखा सुनि स्याम के॥

जो गुन आवैं दृष्टि माँझ, नस्वर है सारे।
इन सबहिन तैं बासुदेव, अच्युत हैं न्यारे॥
इंद्री दृष्टि बिकार तैं, रहत अधोक्षज जानि।
सुद्ध-सरूपी स्याम कौ, आपनि तिन कौ हानि॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥

नास्तिक जे है लोग, कहा जानै हित रूपै।
प्रगट भानु कौ छाँड़ि, गहै परछाहीं धूपै॥
हमरे बिन वह रूप ही, और न कछू सुहाइ।
ज्यौ करतल आमलक के, कोटिक ब्रह्म दिखाइ॥
सखा सुनि स्याम के॥

ऐसै मै नँदलाल रूप, नैनन के आगे।
आइ गये छबि छाइ, बने बीरे अरु बागे॥
ऊधौ सौ मुख मोरि कै, तिन ही सौ कहै बात।
प्रेम-अमृत मुख तै श्रवत, अंबुज-नैन चुचात॥
तरक रसरीति की॥

अहो नाथ, अहो रमानाथ, जदुनाथ गुसाईं।
नँद-नदन बिडराति फिरति, तुम विन बन गाईं॥
काहे न फेरि कृपाल ह्वै, गो-ग्वालन सुधि लेहु।
दुख-जलनिधि हम बूड़ही, कर अवलंबन देहु॥
निठुर ह्वै कहँ रहे॥

कोउ कहै अहो दरस देहु, पुनि बेनु बजावौ।
दुरि दुरि बन की ओट, कहा हिय लौन लगावौ॥
हम कौ पिय तुम एक हौ; तुम कौ हम सी कोरि।
वहुत पाइ कै रावरे, प्रीति न डारौ तोरि॥
एक ही बार जी॥

कोउ कहै अहो दरस देत, फिरि लेत दुराई।
यह छलविद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई॥
हम सब रस-आधीन है, तातें बोलत दीन।
जल बिन कहौ कैसें जियें, पराधीन जो मीन॥
बिचारी रावरे॥

कोउ कहै अहो स्याम, कहा इतराइ गये हौ।
मथुरा को अधिकार पाइ, महाराज भये हौ॥
ऐसी कछू प्रभुता अहो, जानत कोऊ नाहिं।
अबला-बध सुनि डरि गये, बड़े बली जग माहिं॥
पराक्रम जानि कै॥

कोउ कहै अहो स्याम, चहत मारन जौ ऐसें।
गिरि गोबर्धन धारि, करी रच्छा तुम कैसें॥
ब्याल, अनल, बिष-ज्वालतें, राखि लई सब ठौर।
बिरह-अनल अब दहत हौ, हँसि हँसि नंदकिसोर॥
चोरि चित लै गये॥

कोउ कहै ये निठुर, इन्हैं पातक नहिं ब्यापै।
पाप-पुन्य के करनहार, ये ही हैं आपै॥
इन के निर्दय रूप में, नाहिन कोऊ चित्र।
पय-प्यावत प्रानन हरे, पूतना बाल चरित्र॥
मित्र ये कौन के॥

कोउ कहै री आज नाहिं, आगे चलि आई।
रामचंद्र के रूप, धर्म मैं ही निठुराई ॥
जग्य करावन जात है, बिस्वामित्र समीप।
मग मैं मारी ताड़का, रघुवंसी-कुल-दीप ॥
बाल ही रीति यह ॥

कोउ कहै ये परम धर्म, इस्त्रीजित पूरे।
लच्छ लच्छ संधान धरे, आयुध के सूरे ॥
सीता जू के कहे तैं, सूपनखा पै कोप।
छेदि अंग विरूप करि, लोगन लज्जा लोप ॥
कहा ताकी कथा ॥

कोउ कहै री सुनौ और, इन के गुन आली।
वलि राजा पै गये, भूमि माँगन बनमाली ॥
माँगत बामन रूप धरि, परवत भये अकाइ।
सत्य धर्म सब छाँडि कै, धरचौ पीठि पै पाइ ॥
लोभ की नाउ ये ॥

कोउ कहै री कहा, हिरनकस्यप पै बिगरचौ।
परम ढीठ प्रहलाद, पिता-सनमुख ह्वै झगरचौ ॥
सुत अपने कौ देत हो, सिच्छा दंड बँधाइ।
इन बपु धरि नरसिंघ कौ, नखन बिदारचौ जाइ ॥
बिना अपराध ही ॥

कोउ कहै इन परसुराम ह्वै, माता मारी।
फरसा काँधे धारि, भूमि छत्रिन संहारी॥
छत्रिन-रुधिर भराइ कै, पोखे अपने पित्र।
इन के निर्दय रूप मैं, नाहिन कोउ चित्र॥
बिलग कहा मानियै॥

कोउ कहै री कहा दोष सिसुपाल नरेसै।
ब्याह करन कौं गयौ, नृपति भीषम के देसै॥
दल-बल जोरि बरात कौ, ठाढ़ौ हो छबि बाढ़ि।
उन छल करि दुलही हरी, छुधित ग्रास मुख काढ़ि॥
आपने स्वारथी॥

इहि बिधि ह्वै आवेस, परम प्रेमहि अनुरागी।
और रूप पिय-चरित, तहाँ कछु सोचन लागी॥
रोम रोम रहे ब्यापि कै, जिन के मोहन आइ।
तिन के भूत भविष्य कौ, जानत कोउ न दुराइ॥
रँगीली प्रेम की॥

देखत इन कौ प्रेम, नेम ऊधौ कौ भाज्यौ।
तिमिर भाउ आवेस, बहुत अपने मन लाज्यौ॥
मन मैं कहौ रज पाइ कै, लै माथे निज धारि।
परम कृतारथ ह्वै रह्यौ, त्रिभुवन आनँद वारि॥
वंदना जोग ये॥

कोउ कहै रे मधुप, कौन तुम कहै मधुकारी ।
लिये फिरत मुख जोग-गांठि प्रेमी वधुकारी ॥
रुधिर पान कियौ वहुत कै, अधर अरुन रँग रात ।
अव व्रज मै आये कहा, करन कौन की घात ॥
जात किन पातकी ॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेम पटपद पसु देख्यौ ।
अव लौं इहि व्रज देस माहिं, कोउ नाहिं विसेख्यौ ॥
दोइ सिग मुख पर जमै, कारौ-पीरौ गात ।
खल अमृत सम मानही, अमृत देखि डरात ॥
वादि यह रसिकता ॥

कोउ कहै रे मधुप, ग्यान उलटौ लै आयौ ।
मुक्ति परे जे रसिक, तिन्हैं फिरि कर्म वतायौ ॥
वेद पुरानन-सार जे, मोहन-गुन गहि लेत ।
तिन कौं आतम सिद्धि की, फिरि फिरि संथा देत ॥
जोग चटसार मै ॥

कोउ कहै अहो मधुप, निगुन-निरनै वहु जानौ ।
तर्क-वितर्कन जुक्ति, सास्त्र हू तैं वहु आनौ ॥
पै इतनौ नहिं जानही, वस्तु विना गुन नाहिं ।
निर्गुन सक्ति जु स्याम की, लिये सगुन ता माहि ॥
जोति जल-बिंब मै ॥

कोउ कहै रे मधुप, तुम्हैं लाजौ नहिं आवै।
स्वामी तुम्हरो स्याम, कूबरीनाथ कहावै॥
ह्यौं नीची पदवी हुती, गोपीनाथ कहाइ।
अब जदुकुल पावन भयौ दासी जूठन खाइ॥
मरत कहु बोल कौ॥

कोउ कहै अहो मधुप, स्याम जोगी तुम चेला।
कुबजा-तीरथ जाइ, करौ इंद्रिन कौ मेला॥
मधुबन सिधि फैलाइ कै, आये गोकुल माहिं।
इत सब प्रेमी लोग हैं गाहक तुमरे नाहिं॥
पधारौ रावरे॥

कोउ कहै अहो मधुप, साधु मधुबन के ऐसे।
और तहा के सिद्ध लोग, ह्वैहैं धौं कैसे॥
अवगुन गुन गहि लेत हैं, गुन कौ डारत मेटि।
मोहन निर्गुन क्यों न होहिं, तुम साधुन की भेटि॥
गाठि कौ खोइ कै॥

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुम से जो संगी।
क्यों न होहिं तन स्याम, सकल बातन चतुरंगी॥
गोकुल में जोरी कोऊ, पाई नाहिं मुरारि।
मदन त्रिभंगी आप हैं, करी त्रिभंगी नारि॥
रूप-गुन-सील की॥

कै हौ ह्वै रहौ गुल्म लता, वेली व्रन माही ।
आवत-जात सुभाउ, परै मो पै परछांहीं ॥
सोऊ मेरे वस नही, जो कछु करौ उपाइ ।
मोहन हौहि प्रसन्न जी, यह वर माँगौ जाइ ॥
कृपा करि दैहि जी ॥

ऐसै मन अभिलाष करत, मथुरा फिरि आयौ ।
गदगद पुलकित रोम, अंग आवेस जनायौ ॥
गोपी-गुन गावन लग्यौ, मोहन-गुन गयौ भूलि ।
जीवन कौ लै का करै, पायौ जीवनमूलि ॥
भक्ति कौ सार यह ॥

ऐसै सोचत जहाँ स्याम, तहँ धायौ आयौ ।
परिकर्मा दंडौत, प्रेम सो वहुत जनायौ ॥
कछु निर्दयता स्याम की, करि क्रोधित दोउ नैन ।
कछु व्रजवनिता प्रेम की, बोलत रस-भरे बैन ॥
सुनौ नँद-लाड़िले ॥

करुनामय है रसिकता, तुम्हरी सब झूठी ।
तब ही लौ लहै लाख, जबहिं लौ बाँधी मूठी ॥
मै जान्यौ व्रज जाइ कै, निर्दय तुम्हरौ रूप ।
जो तुम कौ अवलंबही, तिन कौ मेलौ कूप ॥
कौन यह धर्म है ॥

पुनि पुनि कह्यौ, अहो सखा, जाइ वृंदावन रहियै।
परम प्रेम को पुंज, जहाँ गोपिन सँग लहियै॥
और काम सब छाँड़ि कै, उन लोगन सुख देहु।
नातरु टूट्यौ जात है, अब ही नेह सनेहु॥
करौगे तौ कहा॥

सुनत सखा के बैन, नैन भरि आये दोऊ।
बिबस प्रेम आवेस, रही नाहीं सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रहीं साँवरे गात।
कल्पतरोवर साँवरो, ब्रज-बनिता भईं पात॥
उलहि अंग अंग तें॥

ह्वै सचेत कह्यौ भले सखा पठये सुधि-ल्यावन।
औगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे बतावन॥
सो मैं उन मैं अंतरौ, एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यौं देखौ मो माँझ वे, त्यौं मैं उन ही माहिं॥
तरंगनि बारि ज्यौं॥

गोपी ग्वाल दिखाइ, एक करि कै बनवारी।
ज्यौं सरूप निरधारि, टारि माया की जारी॥
जल जौ रूप दिखाइ कै, लीनो बहुरि दुराइ।
'नंददास' पावन भयौ, सुन यह लीला गाइ॥
प्रेमरस पुंजिनी॥

रुक्मिनी मंगल

श्री गुरुचरन-प्रताप, सदा आनंद वढै उर ।
कृष्न-कृपा तैं कथा कहूँ, पावत सुख सुर-नर ।।
रुक्मिनि-हरन पुनीत, चित्त दै सुनै-सुनावै ।
जाहि मिटै जम-त्रास, वास हरि के पद पावै ।।
सिसुपालहि दई रुक्म, रुक्मिनी वात सुनी जव ।
चित्र लिखी सी रहीं, दई यह कहा भई अव ।।
चकित चहूँ दिसि चहति, बिछुरि मनु मृगी माल तैं ।
भयौ है बदन कछु मलिन, नलिन जनु गलित नाल तैं ।।
भरि आये जल नैन, प्रेम-रस ऐन सुहाये ।
जनु सुदर अरविंद, अलिन-दल बैठि हलाये ।।
अलि पूछति वलि वात, कहौ क्यौं नैननि पानी ।
पुहुप-रेनु उडि परी, कहति तिन सौं मधु वानी ।।
काहू के ढिंग कुँवरि, वड़े वड़े स्वास न लेई ।
कंहत वात, मुख मूँदि मूँदि, उत्तर तिहि देई ।।
जो कोउ तपत उसास, उदास वदन तैं लहिहै ।
कन्या बिरहिनि, बिरह-दु.ख का का सौं कहिहै ।।
सुसम कुसम के हार, उदार सखी गुहि लावैं ।
कर सौं कुँवरि न परसै, अर सौं निकट धरावैं ।।

अपने कर जु बिरह-जुर जानति प्रति ही ताते ।
मनि मुरझाइ सो माला, बाला डरपति याते ॥
मिटी भूख अरु प्यास, पास कोउ और न भावै ।
कोने जाइ उसास भरै, दुख कहत न आवै ॥
दुरी न रहति पिय आरति, प्रगटहि देति दिखाई ।
पुलकित अंग, स्वर-भंग, स्वेद, कबहूँ जड़ताई ॥
उर थर थर थर कंपत, चितवत कुँवर कन्हाई ।
कबहूँ टकी लगि जाइ, कबहुँ आवत मुरझाई ॥
ह्वै गयौ कछु बिबरन तन, छाजत यौं छबि छाई ।
रूप अनूपम बेलि, तनक मनु घाम मैं आई ॥
मंगल दुंदुभि सुनै, धुनै धुन ज्यौं मन माहीं ।
निरखि निरखि कर-कंकन, दृग जल भरि भरि आहीं ॥
टप टप छबिले नैनन ह्वै नै अंसुवा ढरहीं ।
मनु नव नील कमल-दल तै झरत मोतिया झरहीं ॥
रहहिं मन मन सोचत, सोचत स्याम ढरारे ।
मोहन सोहन स्याम, न ह्वैहै पीय हमारे ॥
उपजि बिरह-दुख-दवा, अबला-उर ताप तये है ।
सोउ सोउ हार के मोतिया, तचि तचि लाल भये है ॥
करत विचार मनहि मन, अब धौं कैसी कीजै ।
नँददास, कुलकानि किये, मोहि सरबस छीजै ॥
ज्यौं लगि हरि अनुसरौं, करौं कोउ जतन, धरौं हठ ।
सत्त, लाज कुल कान, बधूजन सबै परौं सठ ॥

आगि लागि जरि जाहु लाज, जो काज बिगारै।
सुदर नंद-कुँवर नगधर सौं अंतर पारै॥
पति परिहरि, हरि भजत भई, गोकुल की गोपी।
तिनहुँ सबै विधि लोपी, परम प्रेम-रस-ओपी॥
तिन के चरन-कमल-रज, अज से वांछन लागे।
सनक, सनंदन, सिव, सारद, नारद अनुरागे॥
इहि बिधि धरि मन धीर, चीर अँसुवन सिराइ कै।
लिख्यौ पत्र सु बिचित्र, चित्र नाना बनाइ कै॥
तब इक द्विज बर बोलि, खोलि निज बात कही सब।
अहो देव, द्विजदेव! पिया पै तुरत जाहु अब॥
यह पाती मो नाथ-हाथ, ही मै तुम दीजौ।
काहू नाहि पतीजौ, बलि बलि एती कीजौ॥
द्विज न गयौ फिरि भवन, गवन कियौ धरि जु पवन-गति।
आरति निरखि रुक्मिनी, अरु उत कृष्न-दरस-रति॥
पुरी परम माधुरी, चाहि कै चकित भयौ चित।
श्रीनिवास कौ निज निवास, छवि को कहियै तित॥
बन-उपवन के रूख, भूख भाजै तिहिं देखै।
अमृत-फरन करि फरे, ढरे सुर-द्रुमन बिसेखै॥
ललित लतनि की फूलनि, झूलनि अति छवि छाजै।
तिन पर अलि-रव राजै, मधुरे जंत्र से बाजै॥
सुक, पिक, चातक सबद, सु मीठी धुनि अस रटही।
मनौ मार-चटसार, सुढार चटा-गन पढ़ही॥

और बिहंगम रंग भरे, बोलत हिय हरहीं।
उन तरवर रस भरे, परस्पर बातैं करहीं॥
सुभग सुगंध सरोवर, निर्मल मुनि-मन जैसे।
प्रफुलित बरहि कंजु, सरोवर राजत तैसे॥
फूल कुंज प्रति, पुंज, भँवर, गुंजत अनुहारे।
मनौं रवि-डर तम भजै, तजै, रोवत हैं बारे॥
उज्ज्वल मनिमय अटा, घटा सौं बातैं करई।
जगमग जगमग जोति होति, रवि-ससि सौं अरई॥
चपल पताका फरकैं, अरकैं अरक-किरन जहँ।
घाम न कबहूँ परसै, नित ही छाँह रहत तहँ॥
जाल-रंध्र-मग अगर-धूम, जनौ जल-धर धुरवा।
आनँद भरि भरि उरवा, नाचत मधुरे मुरवा॥
डगर डगर नव नगर, उड़ी नभ गुड़ी बनी छवि।
मनौं गगन मैं अगन, चौखुटे चंद रहे फवि॥
तैसेइ देव बिमाननि चढ़ि, द्वारावति आये।
देखि देखि हिय हरखैं, बरखैं सुमन सुहाये॥
कृष्न-भावनौ पुरी निरखि, द्विज हरष भयौ अस।
ग्यान-कुंद तैं निकसि, ब्रह्म-आनंद मिल्यौ जस॥
सिहौंरि छवि थोरि रही, न कही बनि आवै।
अर्थ, धर्म, अरु काम, मोक्ष, जिहिं निरखत पावै॥
तहँ अनेक परचार, भार ते बनि बनि ठाढ़े।
कुसुम-कल्पतरु सुंदर, सीतल छाँह के बाढ़े॥

ब्रह्म, रुद्र, अमरेंद्रवृंद की भीर भुलावै ।
भीतर जान सो पावै, जिहिं हरिदेव बुलावै ।।
चल्यौ गयौ तहँ विप्र छिप्र गति, कितहुँ न अटक्यौ ।
प्रभू जानि ब्रह्मन्य, पौरिया पाइनि लटक्यौ ।।
जदु पुरुषन के मध्य, देखि जदुपति सुख पायौ ।
जनु उडपति उड-मंडल तें महि-मंडल आयौ ।।
किधौं कमल-मंडल मैं, अमल दिनेस विराजै ।
कंकन, किंकिनि, कुंडल, किरन महा छवि छाजै ।।
ताहि दूरि तें निरखि, परखि, हरि हर्षित होई ।
प्रिय संदेस कहैया है, यह द्विज वर कोई ।।
उठि नँद-नंदन, जग-वंदन, पद-वंदन करि कै ।
लै चले घर द्विज वर कौं, हरि कर पै कर धरि कै ।।
दुग्ध-फैन सम सैन, रमा-मन ऐन सुहाई ।
ता ऊपर वैठाइ, पाइ धोये जदुराई ।।
अष्टगंध उष्णोदक सौं, अस्नान कराये ।
मंजुल मृदुल महीन, नवीन सु पट पहिराये ।।
खान-पान वहु मान, पान निज पानि खवाये ।
कहौ कहाँ तें आये, वोलौ वचन सुहाये ।।
तव रुक्मिनि कौ कागर, नागर नेह नवीनौ ।
वसन-छोर तें छोरि, विप्र श्रीधर-कर दीनौ ।।
मुद्रा खोलि गोविंद-चंद, जव वाँचन आँचे ।
परम प्रेम-रस साँचे, अच्छर परत न वाँचे ।।

श्री हरि हियौ सिरावत, लावत लै लै छाती ।
लिखी विरह के तावन, पाती अजहूँ ताती ॥
लिये नाद, सचु पाइ, बहुरि द्विज बर कौं दीनी ।
रुकिमनि अँसुवन भीनी, पुनि हरि अँसुवन भीनी ॥
पढ़न लग्यौ द्विज बानी, रुकिमनी-वचन सुहाये ।
सब हरि के मन-नैन, सिमिटि सब श्रवननि आये ॥
स्वस्ति स्वस्ति. श्री श्री-निवास, श्रुति-वास, सहाइक ।
सुर, नर, मुनि, गंधर्व, जच्छ, किन्नर, विधि-नाइक ॥
नृप विदर्भ की कन्या, रुकिमनि अनुचरि गनियैं ।
ताकी प्रथम प्रनाम बाँचि, पुनि विनती सुनियैं ॥
बिलग नाहिनै गनियैं, जानियै अपनी करि कै ।
मग्न होत दुख-जलनिधि में, उद्धरौ कर धरि कै ॥
जब तै तुम्हरे गुन-गन, मुनिजन नारद गाये ।
तब तै और न भावें, अमृत तै अधिक सुहाये ॥
मैं तुम मन करि बरे, कुँवर गिरिधरन पियारे ।
हौं भई तुम परिवार, नाथ तुम भये हमारे ॥
अब निर्दय जनि करौ, बरौ त्रिभुवन-पति सुंदर ।
कहा परम गुन-धाम, सकल सुख-भोग-पुरंदर ॥
और सबै दुख-भरे, करै अंतर ही अंतर ।
जात जौन से मरें, परें छिन ही छिन संतर ॥
देखत के सब गोरे, नव नव पानिप बोरे ।
हार रजत नहिं भावै, जद्यपि उज्जल ओरे ॥

[illegible] सिसुपाल, जाहि मोंहि देत रुक्म सठ ।
[illegible] हारै, होत नहि सो चट तैं गठ ॥
[illegible] करियै, करत लाज नहि मरियै ।
[illegible]-बिदारन ! अलि गोमाय न डरियै ॥
[illegible] जदुबंस. बीर जू बलहि बिचारो ।
है तुमरो यह भाग, काग सिसुपाल बिडारो ॥
परत परेवा नभ तैं, पर कर देखत याकौं ।
तुम सब लाइक अछत, छुवै सिसुपाल छिया कौं ॥
जो नगधर नँदलाल, मोहि नहि करिहौ दासी ।
तौ पावक परि जरिहौं, करिहौं तन की कासी ॥
मरि मरि, धरि धरि देहन, पैहौं सुंदर हरि बर ।
पै यह कबहुँ न होइ, स्याल सिसुपाल छुवै कर ॥
सुनि रुक्मिनि की पाती, छाती पुनि लगाइ कै ।
सारथि तैं रथ माँग्यौ, रुक्म पै अति रिसाइ कै ॥
तुरत चढ़े, छबि-बढे, चढत बानक बनि आयौ ।
अरबर मैं खसि परयौ, पीतपट, द्विज पकरायौ ॥
करत बिप्र सौं बात, लसत, बिकसत सुंदर मुख ।
जनु कुमुदिनि घर चल्यौ, चंद्रमा दैन परम सुख ॥
अहो द्विज! सब दल दलमलि, लाऊँ रुकमिनि ऐसैं ।
दारु मथन करि सार, अगिनि-कन काढत जैसैं ॥
जानि प्रिया की आरति, हरि अरबर सौं धाये ।
मन की सी गति करे, चले कुंदनपुर आये ॥'

ज्यौं बौंरि तरफरति, फिरति घर आँगन गैनैं।
सलिल-हीन तलफन करी मछरी, थोरे जल जैनैं ॥
चढ़ि चढ़ि अटनि, झरोखनि, झाँकति नवल किसोरी।
चंद-उदै ज्यौं चाहत, आरत तृपित चकोरी ॥
बाम भुजा लगी फरकन, कंचुकी बँध लगे तरकन।
सिर तैं सूल लग्यौ सरकन, उर-अनार लग्यौ धरकन ॥
ताही छिन वह द्विज वर, चलि अन्तहपुर आयौ।
वदन लहलह्यौ देखि, कछु मन धीरज पायौ ॥
पूँछि न सकै कुँअरि बात, दई वह कहा कहैगौ।
किधौं अमृत सौं सींचि, किधौं विष देह दहैगौ ॥
निकसि प्रान तिय-तन तैं, द्विज के वचननि आये।
उन कह्यौ 'श्री हरि आये', मनहुँ बहुर्यौ फिरि आये ॥
दियौ चहै कछु द्विजहि, नहीं देखै तिहि लाइक।
तब उठि पाइनि परी, भरी आनंद महा इक ॥
सुर-नर जाकौं सेवत, सेवत हू नहिं लहियै।
सो लछिमी जिहि पाइ परी, ताकी कहा कहियै ॥
पुर के लोगन सुनी, कि श्री सुंदर वर आये।
जहाँ तहाँ तैं आये, देखि हरि विस्मय पाये ॥
कोटि काम-लावन्य-धाम, अँग साँवरे पिय के।
जे जे जाकी दृष्टि परे, ते भये तिन ही के ॥
कोउ सौं अलक छबि उरझे, मन हूँ नाहिन सुरझे।
लोचन लटपटी पगिया, नचि नचि तहँ तहँ सुरझै ॥

देखन छवि-छल अपने वर की आरति उलही।
निरखत निरपति सगरे, उरपति नैंक न दुलही॥
घूँघट-पट कियो हाँतो, सोभित वदन उहडही।
जनौं अंवुद तैं अव ही, निकस्यौ चंद गहगही॥
सोभा-सदन वदन मैं, रदन-छवि राजत ऐसैं।
अरुन बदल मैं दमकत, दामिनि-अंकुर जैसैं॥
श्रवननि सुदर खुभी, चुभी सब के मन ऐसै।
काम-कलभ की अब ही, उलही दँतिया जैसै॥
अली अंस भुज दिये, निहारति, अलक सुधारति।
सर-कटाच्छ रस-भरे, सु तकि तकि भूपन मारति॥
परे जहाँ तहाँ मुरझि, भूप सव उरझि उरेझा।
पाँचवान-सर साधि, करे मनमथ के वेझा॥
दृष्टि परे जव मोहन सोहन, कुँवर कन्हाई।
तिहि छिन दुलहिनि-दसा, नाहि कछु वरनी जाई॥
अरवराइ, मुरझाइ, कछू न वसाइ तिया पै।
पंख नाहि तन वने, नतरु उड़ि जाइ पिया पै॥
हरै हरै पग धरै, हरी रुक्मिनि नियराई।
टक टक सव नृप लखै, मनौ ठग मूरी खाई॥
कछु रुक्मिनि चलि आई, हरि लै रथ वैठाई।
घन तै विछुरी बिजुरी, मनौ घन मै फिरि आई॥
लै चले नागर नगधर, नवल तिया को ऐसैं।
माँखिन आँखिन धूरि पूरि, मधुहा मधु जैसै॥

गरुड़ हर्यौ जिमि सुधा, दर्प सब सुरन कौं हरि ।
तैसैं हरि लै चले, आपनौ सहज खेल करि ॥
सुंदर साँवरे पिय सँग, अति ही आभा भारी ।
जनु नव नीरद निपट, चारु चंद्रिका प्रकासी ॥
हरी हरी यौं दुलहिनि, कहि सब लोग पुकारे ।
कित गये वे सब भूप, जूप सारे बजमारे ॥
जरासंध दै आदि, नृपति सजि सजि कै दौरे ।
महा सिंह के पाछे, कूकत कूकर बौरे ॥
देखे रिपु-दल भारे, तब बलदेव सम्हारे ।
मद गज ज्यौं सर पैठि, कमल से दलमलि डारे ॥
मरन तैं अधिक जु मान-भंग, मागध दुख पायौ ।
जहँ दूलह सिसुपाल, तहाँ सब रोवन आयौ ॥
दुख पै दुख भयौ दूनौ, कर-कंकन दुख दीन्हौ ।
तापरि चन्दन के काजर, पुनि मुख कारौ कीन्हौ ॥
तब निकस्यौ नृप रुक्म, धरे सिर कंचन कुलही ।
रे नंद तुम ठहराहु, आनि देहुँ तुमरी दुलही ॥
यह कहि रिस भरि धायौ, आयौ हरि पै ऐसैं ।
दुरलभ दीप पतंग, प्रबल पावक मैं जैसैं ॥
जो कोउ ससिमंड, चंद कौं धूरि उड़ावै ।
उलटि दृगनि जब परै, मूढ कौं तब सुधि आवै ॥
निरख छोह करि हरि हन्यौ, तैसौ नहिं कीनौ ।
मूड़ मूड़ि मन चुटिया राखि, तिहिं छाँड़ि है दीनौ ॥

इहि बिधि सब रन जीति, हरी रुक्मिनि लै आये।
विधिवत कियौ विवाह, तिहूँ पुर मंगल गाये॥
जो यह मंगल गावै, चित दै सुनै-सुनावै।
सो सब मगल पावै, हरि-रुक्मिनि मन भावै॥
हरि-रुक्मिनि मन भावै, सो सब के मन भावै।
'नददास' अपने प्रभु को यह मंगल गावै॥

रासपंचाध्यायी

प्रथम अध्याय

वंदन करौं कृपानिधान, श्री सुक सुभकारी।
सुद्ध जोतिमय रूप, सदा सुंदर, अविकारी॥
हरि-लीला-रस-मत्त, मुदित नित बिचरत जग मैं।
अद्भुत गति, कहुँ नहिं अटक, ह्वै निकसत मग मैं॥
नीलोत्पल-दल स्याम अंग, नव जोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुख-कमल, मनौ अलि-अवलि बिराजै॥
ललित बिसाल सुभाल, दिपत मनौ निकर-निसाकर।
कृष्न - भक्ति - प्रतिबिंब, तिमिर कौं कोटि दिवाकर॥
कृपा - रंग - रस - अयन, नयन राजत रतनारे।
कृष्न - रसासव - पान, अलस, कछु घूम घुमारे॥
स्रवन कृष्न - रस - भवन, गंड-मंडल भल दरसैं।
प्रेमानंद मिली सु मंद मुसकनि मधु बरसै॥
उन्नत नासा, अधर-बिंब, सुक की छबि छीनी।
तिन बिच अद्भुत भाँति, लसत कछु इक मसि भीनी॥
कंबु-कंठ की रेख देखि हरि-धर्म प्रकासैं।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह जिहिं निरखत नासैं॥

तिन-मधि इक जु कलपतरु, लगि रही जगमग जोती ।
पत्र-मूल, फल-फूल, सकल हीरा-मनि-मोती ॥
तिन-मधि तिन के गंध-लुब्ध अस गान करत अलि ।
वर किन्नर-गंधर्व, अप्सरा, तिन पर गईं बलि ॥
अमृत-फुही, सुख-गुही, अति सुही, परत रहत नित ।
रास-रसिक, सुंदर पिय कौ श्रम दूरि करन हित ॥
तिहि सुरतरु-मधि, अवर एक अद्भुत छबि छाजै ।
साखा, दल, फल-फूलनि, हरि-प्रतिबिंब बिराजै ॥
ता-तर कोमल कनक-भूमि, मनिमय मोहति मन ।
देखियत सब प्रतिबिंब, मनौ घर मैं दुसरी बन ॥
थलज-जलज झलमलत, ललित बहु भँवर उड़ावै ।
उड़ि उड़ि परत पराग, कछु छबि कहत न आवै ॥
श्री जमुना अति प्रेम-भरी, तट बहत जु गहरी ।
मनि-मंडित महि माहि, दौरि जनु परसत लहरी ॥
तहँ इक मनिमय, इक, बितस्ति कौ संकु सुभग अति ।
तापर षोड़षदल-सरोज, अद्भुत चक्राकृति ॥
मधि कमनीय करनिका, सब सुख-कंदर, सुंदर ।
तहँ राजत ब्रजराज-कुँवर, वर रसिक-पुरंदर ॥
निकर बिभाकर दुति मेटत, सुभ कौस्तुभ मनि अस ।
हरि जू के उर रुचिर बिषै, लागति सो उड़ जस ॥
मोहन अद्भुत रूप, कहि न आवै छबि ताकी ।
अखिल, अंड-व्यापी जु ब्रह्म, आभा है जाकी ॥

परमातमा परब्रह्म, सबन के अंतरजामी।
नारायन भगवान, धर्म करि सब के स्वामी॥
बाल - कुमार - पौगंड, धर्म-आक्रांत ललित तन।
धर्मी. नित्य किसोर, कान्ह मोहन सब कौ मन॥
मृदु, उज्जल, स्यामल सु अंग, अद्भुत सिंगार किय।
नव किसोर, जे मोर-चंद्रिका सुभग सीस दिय॥
कंठ मुक्तन की माल, ललित बनमाल धरे पिय।
मंद मधुर हँसि, पीत बसन फरकत, करखत हिय॥
अस अद्भुत गोपाल बाल, सब काल बसत जहँ।
याही तें बैकुंठ-बिभौ कुंठित लागत तहँ॥
जदपि सहज माधुरी बिपिन, सब दिन सुखदाई।
तदपि रँगीली सरद समै मिलि अति छबि पाई॥
ज्यौं अमोल नग जगमगात, सुंदर जराइ सँग।
रूपवंत, गुनवंत, बहुरि भूषन-भूषित अँग॥
रजनी-मुख-सुख देखि, ललित प्रफुलित जु मालती।
ज्यौं नव जोबन पाइ, लसति गुनवती बाल ती॥
छबि सौं फूले अवर फूल, अस लगति लुनाई।
मनहुँ सरद की छपा छबीली, बिहँसति आई॥
ताही छिन उडुराज उदित, रस रास सहाइक।
कुंकुम-मंडित प्रिया-बदन, जनु नागर नाइक॥
कोमल किरन-अरुनिमा, बन में ब्यापि रही यौं।
मनसिज खेल्यौ फाग, घुमड़ि घुरि रह्यौ गुलाल ज्यौं॥

फटिक-छटा सी किरन, कुंज-रंध्रनि जब आई।
मानहुँ बितन बितान, सुदेस तनाव तनाई॥
मंद मंद चलि चारु चंद्रमा, अस छबि पाई।
उझकत है जनु रमारमन पिय-कौतुक आई॥
तब लीनी कर-कमल, जोगमाया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर, बहुरि अधरासव जुरली॥
जाकी धुनि तें निगम अगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद-ब्रह्म की जननि, मोहिनी, सब सुख-सागर॥
पुनि मोहन सौं मिली, कछुक कल-गान कियौ अस।
वाम-विलोचन बाल-तियन, मनहरन होइ जस॥
मोहन मुरली-नाद, श्रवन जु सुन्यौ सब किन ही।
जथा जथा बिधि रूप, तथा विधि परस्यौ तिन ही॥
तरनि-किरन ज्यौं मनि, पखान, सबहिन कौं परसैं।
सुरजकांति-मनि बिना, नहीं कहुँ पावक दरसैं॥
सुनत चली ब्रज-वधू, गीत-धुनि कौ मारग गहि।
भवन-भीति, द्रुम-कुंज-पुंज, कितहूँ अटकी नहि॥
नाद-अमृत कौ पंथ, रँगीलौ, सूच्छम भारी।
तिहि मग ब्रज-तिय चली, आन कोउ नहि अधिकारी॥
सुद्ध प्रेममय रूप, पंचभौतिक तें न्यारी।
तिनहि कहा कोउ गहै, जोति सी जग उजियारी॥
जे रुकि गईं घर, अति अधीर गुनमय सरीर बस।
पुन्य-पाप प्रारब्ध सच्यौ, तिन नाहि पच्यौ रस॥

परम दुसह श्री कृष्न-विरह-दुख व्याप्यौ जिन मैं।
कोटि बरस लगि नरक-भोग-अघ भुगते छिन मैं॥
पुनि रंचक धरि ध्यान, पियहि परिरंभ दियौ जब।
कोटि स्वर्ग-सुख भुगति, छीन कीने मंगल सब॥
पितल-पात्र पाहनहि परसि, कंचन ह्वै सोहै।
नंद-सुवन सौं परम प्रेम, यह अचरिज को है॥
ते पुनि तिहि मग चली, रँगीली तजि गृह-संगम।
जनु पिंजरन तैं छुटे, घुटे नव प्रेम-विहंगम॥
कोउक तरुनि गुनमय सरीर, तिन-संग चली ढुकि।
मात, पिता, पति, बंधु रहे झुकि, नहिन रही रुकि॥
सावन-सरिता रुकै, करै जौ जतन कोऊ अति।
कृष्न हरे जिन के मन, ते क्यौं रुकहिं, अगम गति॥
चलत अधिक छवि फबत, श्रवन मनि-कुंडल झलकैं।
नचित लोचन चपल, ललित छवि-विलुलित अलकैं॥
जदपि कहूँ के कहूँ बधुन आभरन बनाये।
हरि पिय पै अनुसरत, जहाँ के तहँ चलि आये॥
कहुँ देखियत कहुँ नाहिं, बधू बन-बीच बनी यौं।
बिजुरिन के से टूक, सघन बन-माँझ चलत ज्यौं॥
आइ उमग सौं मिलीं, रँगीली गोप-बधू अस।
नंद-सुवन सुंदर सागर सौं, प्रेम नदी जस॥
परम भागवत-रत्न रसिक, जु परीच्छित राजा।
प्रस्न करी रस-पुष्ट-करन, निज सुख के काजा॥

श्री भागवत कौ पात्र जानि जग की हितकारी।
उदर-दरी मैं करी कान्ह जाकी रखवारी॥
जाकौ सुदर स्याम-कथा, छिन छिन नई लागै।
ज्यौ लंपट पर-जुवति-वात सुनि अति अनुरागै॥
हो मुनि! क्यौ गुनमय सरीर परिहरि पाये हरि।
जानि भजे कमनीय कान्ह, नहि ब्रह्म भाउ करि॥
तव कही श्री सुकदेव देव यह अचरिज नाही।
सर्व भाउ भगवान कान्ह जिन के मन माही॥
परम दुष्ट सिसुपाल, वालपन तै निंदक अति।
जोगिन कौ जो दुर्लभ, सुलभहि पाई सो गति॥
ये हरि-रस-ओपी गोपी, सव तियन तै न्यारी।
कमल-नयन गोबिंदचंद की प्रानपियारी॥
तिन के नूपुर-नाद, सुने जव परम सुहाये।
तव हरि के मन-नैन, सिमिटि सव श्रवननि आये॥
रुनुक झुनुक पुनि छविली भाँति, सब प्रगट भई जव।
पिय के अँग-अँग सिमिटि, मिले छविले नैननि तव॥
कुजन कुजन निकसत, सोभित वर आनन अस।
तम कौने तै निकरि, लसत राका-मयंक जस॥
सब के मुख अवलोकत, पिय के नैन वनैं यौ।
बहुत सरद ससि-माँझ, अरवरे द्वै चकोर ज्यौ॥
अति आदर करि लई, भई चहुँ दिसि ठाढ़ी अनु।
छविली छटनि मिलि छेकी, मंजुल घन-मूरति जनु॥

नागर वर नँद-नंद-चंद, हँसि मंद मंद तव।
बोले बाँके बैन, प्रेम के, परम ऐन सब ॥
उज्वल रस कौ यह सुभाउ, बंकहि छवि पावै।
बंक कहनि, अरु चहनि बंक, अति रसहि बढ़ावै ॥
ये सब नवलकिसोरी, गोरी, भरी प्रेम-रस।
तातें समुझि न परी, करी पिय परम प्रेम-वस ॥
ज्यौं नाइक सब गुननिधि, अरु सुंदर जु महा है।
सब गुन माटी होइ, नैंक जौ बंक न चाहै ॥
कौउक बचन कहे नरम, कहे कौऊ रस वर कर।
कौउक कहे त्रिय-धरम, भरम-भेदक सुंदर बर ॥
बाल रसाल के व्यंग वचन सुनि थकित भई यौं।
बाल-मृगिनि की पाँति, सघन बन भूलि परी ज्यौं ॥
मंद परस्पर हँसी, लसी तिरछी अँखियन अस।
रूप-उदधि इतराति, रँगीली मीन-पाँति जस ॥
जब पिय कह्यौ घर जाहु, अधिक चित चिंता बाढ़ी।
पुतरिन की सी पाँति, रहि गईं इक-टक ठाढ़ी ॥
दुख के बोझ, छवि-सींव ग्रीव, नै चली नाल सी।
अलक-अलिन के भार, नमित मनु कमल-माल सी ॥
हिय भरि विरह-हुतास, उसासनि-सँग आवत झर।
तातें कछू मुरझाइ, मधु-भरे अधर-बिंब वर ॥
तब बोली ब्रज-बाल, लाल मोहन अनुरागी।
सुंदर गदगद गिरा, गिरिधरहि मधुरी लागी ॥

अहो मोहन! अहो प्राननाथ! सुंदर सुखदाइक।
क्रूर बचन जिनि कहौ, नहिन ये तुम्हरे लाइक॥
जब कोउ पूछै धर्म, तबहि तासौं कहियैं पिय।
बिन ही पूछे धर्म, कितहि कहियैं, दहियैं हिय॥
धर्म, नेम, जप, तप, ब्रत, सब कोउ फलहि बतावै।
यह कहुँ नाहिन सुनी, जु फल फिरि धर्म सिखावै॥
अरु तुम्हरौ यह रूप, धर्म के धर्महि मोहै।
घर मैं कौ तिय-धर्म भर्म, या आगे को है॥
तैसिय पिय की मुरली, जुरली अधर-सुधारस।
सुनि निज धर्म न तजै, तरुनि त्रिभुवन मैं को अस॥
नगन कौ धर्म न रह्यौ, पुलकि-तन चले ठौर तैं।
खग, मृग, गो-बछ, मच्छ-कच्छ ते रहे कौर तैं॥
सुदर पिय कौ वदन निरखि, अस को नहि भूल्यौ।
रूप - सरोवर - माँझ, सरस अंबुज जनु फूल्यौ॥
कुटिल अलक मुख-कमल, मनौ मधुकर मतवारे।
तिन-मधि मिलि रहे लाल, नैंन चंचल जु हमारे॥
चितवनि मोहन-मंत्र, भौह जनु मनमथ-फाँसी।
निपट ठगौरी आहि, मंद-मृदु, मादक हाँसी॥
अधर-सुधा के लोभ, भई हम दासी तिहारी।
ज्यौ लुब्धी पद-कमलन, कमला चंचल नारी॥
जौ न देहौ अधरामृत, तौ सुनि हो मोहन हरि।
करिहैं यह तन भस्म, बिरह-पावक मैं कुदि परि॥

तउ तिन-तरुनी मध्य, कुँअर प्रगटे सुंदर स्याम ।
निकसत ज्यौं घन-पटल पीछे, पुनि फिरिहैं नैंन ॥
सुनि गोपिन के प्रेम-वचन, आँच सी लागी जिय ।
पिघरि चल्यौ नवनीत मीत नवनीत-सदृस हिय ॥
निरखि मिले नँदलाल, निरखि ब्रजबाल बिरह-बस ।
उमगि प्रानानंद, लहत भईं परम प्रेम-रस ॥
बिहरत बिबिध बिलास, उदार, सदन नँद-नंदन ।
तन कुसुम घनसार चारु चर्चित तन चंदन ॥
सुंदर साँवल अंग, ज्यौं अम्बुद पीतांबर ।
मुकुट धरे सिंगार, प्रेम-अंबर ओढ़े हरि ॥
झिलमिलात उर-बनमाल, लाल जब चलत चाल बर ।
कोटि मदन की भीर उठनि, पुनि लुठनि चरन-तर ॥
गोपीजन - मन - मोहन, मोहनलाल बनें यौं ।
अपनी द्युति के उड़गन, उड़पति घन खेलत ज्यौं ॥
कुंजनि कुंजनि डोलनि, जनु घन तैं घन आवनि ।
लोचन तृषित चकोरन के चित चोप बढ़ावनि ॥
सुभग सरित के तीर, धीर बलबीर गये तहँ ।
कोमल मलय समीर, छबिन की महा भीर जहँ ॥
कुसुम-धूरि धुँधरी कुंज, छबि पुंजन छाई ।
गुंजत मंजु मलिंद, बीन जनु बजत सुहाई ॥
जहँ महकनि मालती चारु चंपक चित चोरत ।
तहँ घनसार-तुसार मिलि मंदार झकोरत ॥

इत लवंग, नव रंग एलची झेलि रही रस।
उत कुरवक, केवरौ, केतकी गंध-बंध-बस॥
इत तुलसी, छवि-हुलसी, छाड़ति परिमल लपटैं।
उत कमोद आमोद गोद भरि, सुख की दपटैं॥
फूलन माल बनाइ, लाल पहिरत-पहिरावत।
सुमन सरोज सुंघावत, ओज मनोज बढ़ावत॥
उज्वल मृदु बालुका, पुलिन अति सरस सुहाई।
जमुना जू निज कर तरंग करि आप बनाई॥
बिलसत बिबिधि बिलास, हास नीबी-कुच परसत।
सरसत प्रेम अनग, रंग नव घन ज्यौं बरसत॥
तब आयौ वह काम, पंचसर-कर है जाके।
ब्रह्मादिक कौं जीति, बढि रह्यौ अति मद ताके॥
निरखि ब्रज-वधू संग, रंग-भीने, किसोर तन।
हरि मन-मथ करि मथ्यौ उलटि वा मनमथ कौ मन॥
मुरझि परचौ तहँ मैन, कहूँ धनु, कहूँ बिसिख बर।
रति दिखि पिय की दसा भीत भई, मारति उर कर॥
पुनि पीयहि आलिगति, रोवति अति अनुरागी।
मदन के बदन चुवाइ अमृत, भुज भरि लै भागी॥
अस अद्भुत मोहन पिय सौं मिलि गोप-दुलारी।
अचरज नहि जो गरब करै, गिरिधर की प्यारी॥
रूप-भरी, गुन-भरी, भरी पुनि परम प्रेम-रस।
क्यौं न करहि अभिमान, कान्ह भगवान जिन के बस॥

जहँ नदी-नीर गँभीर, तहाँ भँवरी सम परहीं ।
छिनछिन सलिल न परै, परै तौ छवि नहि करहीं ॥
प्रेम-पुंज-वर्द्धन के काज, ब्रजराज-कुँवर पिय ।
मंजु कुंज मैं तनक दुरे, अति प्रेम भरे हिय ॥

द्वितीय अध्याय

मधुर वस्तु ज्यौं खात निरंतर, सुख तौ भारी ।
बीच बीच कटु-अम्ल-तिक्त, अतिसय रुचिकारी ॥
ज्यौं पट पुट के दियै, निपट ह्वै परत सरस रँग ।
तैसें ही रंचक बिरह, प्रेम के पुंज बढ़त अँग ॥
जिन कौ नैन-निमेष-ओट, कोटिक जुग जाहीं ।
तिन कौ गृह, वन, कुंज-ओट, दुख-गनना नाहीं ॥
ज्यौं सी रहीं ब्रजबाल, लाल गिरिधर पिय बिन यौं ।
निधन महा धन पाइ, तबहिं ज्यौं जाइ, भई त्यौं ॥
ह्वै गईं बिरह बिकल मन, बूझत द्रुम-बेली बन ।
को जड़, को चैतन्य, कछु न जानत बिरही जन ॥
हे मालति ! हे जाति ! जूथिके! सुनि हित दै चित ।
मान-हरन, मन-हरन लाल गिरिधरन लखे इत ॥
हे केतकि ! इत तें चितये, कितहूँ पिय रूसे ।
किधौं नँद-नंदन मंद मुसकि, तुम्हरे मन मूसे ॥
हे मुक्ताफल बेलि ! धरे मुक्ताफल-माला ।
देखे हैं नैन बिसाल, मोहना नंद के लाला ॥

हे मंदार ! उदार, वीर करवीर ! महामति ।
देखे कहुँ बलवीर धीर, मन-हरन, धीर-गति ॥
हे चंदन ! दुख-कंदन, सब की जरनि जुड़ावहु ।
नँद-नंदन, जग-वंदन, चंदन हमहिं बतावहु ॥
पूछहु री इन लतन, फूलि रही फूलन जोई ।
सुंदर पिय-कर-परस बिना अस फूल न होई ॥
हे सखि ये मृग-वधू, इनहिं किन पूछहु अनुसरि ।
डहडहे इन के नैन, अबहि कहुँ देखे है हरि ॥
अहो सुभग वन-सुगँध पवन! नैसुक थिर ह्वै चलि ।
सुख के भवन,दुख-दवन रवन, कहुँ इत चितये बलि ॥
अहो कदंब! अहो अंब-निंब! क्यौं रहे मौन गहि ।
अहो बट तुंग, सुरंग वीर! कहुँ तैं इत-उत लहि ॥
अहो असोक ! हरि सोक, लोक-मनि पियहि बतावहु ।
अहो पनस सुभ-भासन, प्यासन अमृत जु प्यावहु ॥
जमुना निकट के विटप पूँछि, भई निपट उदासी ।
क्यौं कहिहैं सखि महा कठिन ये तीरथ-वासी ! ॥
अहो कमल ! सुभ-बरन, कहौ तुम कहुँ हरि निरखे ।
कमल-माल बनमाल, कमल-कर अति ही हरखे ॥
हे अवनी, नवनीत-चोर, चित-चोर हमारे ।
राखे कितहि दुराइ, बताइ धौ प्रानपियारे ॥
हे तुलसी ! कल्यानि, सदा गोविंद-पद-प्यारी ।
क्यौं न कहति तू नंद-सुवन सौं दसा हमारी ॥

कहुँ गावत नग-गुन, कुंज गह्वर तरु-छाँहीं।
आपनें मन-भाँवते चरति, सुंदरि तिहिं माहीं॥
इहिं बिधि बन बन ढूँढ़ि, बूझि उनमत की नाईं।
करन लगीं मन-हरन, लाल-लीला मन-भाईं॥
मोहनलाल, रसाल की लीला इन ही सोहैं।
केवल तनमय भईं, कछु न जानति हम को हैं॥
हरि की सी चलनि, बिलोकनि, हरि की सी हेरनि।
हरि की सी गाइन घेरनि-टेरनि, वह पट-फेरनि॥
हरि की सी बन तें आवनि, गावनि अति रस-रंगी।
हरि की सी कौतुक रचनि, नचनि ह्वै ललित त्रिभंगी॥
कोउ गिरिवर अंबर कौ, कर धरि बोलति है तब।
निधरक इहि तर रहौ, गोप-गोपी-गोधन सब॥
भृंगी-भय तें भृंग होइ, वह कीट महा जड़।
कृष्न-प्रेम तें कृष्न होइ, कछु नहिं अचरज बड़॥
तब पायौ पिय-पद-सरोज कौ खोज रुचिर तहँ।
ध्वजबर, अंकुस, कुलिस, कमल अति जगमगात जहँ॥
जो रज सिव-अज खोजत, जोजत जोगी-जन हिय।
सो रज बंदन करन लगीं, सिर धरन लगीं तिय॥
पुनि निरखे ढिंग जगमगात, पिय-प्यारी के पग।
तिनैं परस्पर चकित भईं, जुरि चलीं तिहीं मग॥
चहुँन भाँति सब कहति, कौन यह बड़भागिनि अस।
रसिक कौंद एकांत पाइ, पीवत जु अधर-रस॥

आगे चलि इक अवलोकी, नव पल्लव-सैनी ।
जहँ पिय सुसम कुसम लै कै कर गूँथी वैनी ॥
तहँ पायौ इक मंजु मुकुर, मनि-जटित बिलोलै ।
तिहि पूछै ब्रजबाल, बिरह भरचौ सोउ न बोलै ॥
तरक करहि आपुस मै, कहौ यह क्यौ कर लीनौ ।
तिन मै कोउ तिन के हिय की, जिन उत्तर दीनौ ॥
वैनी गूँथन समै, छैल पाछे वैठे जब ।
सुंदर बदन-विलोकन-सुख कौ अंत भयौ तब ॥
तातै मंजुल मुकर सुकर लै बाल दिखायौ ।
श्रीमुख कौ प्रतिबिंब सखी तब सनमुख आयौ ॥
धन्य कहत भई ताहि, नाहि कछु मन मै कोपी ।
निरमत्सर जे संत, तिन की चूड़ामनि गोपी ॥
इन नीके आराधे, हरि ईसुर वर जोई ।
तातै अधर-सुधा-रस, निधरक . पीवत सोई ॥
पुनि आगे चलि तनक दूरि, देखी सोई ठाढ़ी ।
जासौ सुदर नंद-कुँवर पिय, अति रति बाढ़ी ॥
गोरे तन की जोति, छूटि छबि छाइ रही धर ।
मानौ ठाढी कुँवरि, सुभग कंचन-अवनी पर ॥
जनु घन तै बिछुरी बिजुरी, मानिनि - तन - काछे ।
किधौ चंद सौ रूसि, चंद्रिका रहि गई पाछे ॥
नैनन तै जल-धार, हार-धोवत धर धावत ।
भँवर उड़ाइ न सकति, बास-बस मुख-ढिँग आवत ॥

क्वासि क्वासि ! पिय महाबाहु ! इमि बदति अकेली ।
महा बिरह की धुनि सुनि, रोवत खग, मृग, बेली ॥
ता सुंदरि की दसा देखि, कछु कहत न आवै ।
बिरह-भरी, पूतरी होइ ज्यों, अति छबि पावै ॥
धाइ भुजन भरि लई, सबन लै लै उर लाई ।
मनहुँ महा निधि खोइ, मध्य आधी निधि पाई ॥
कोउ चूंबत मुख-कमल, कोउ भुज, भाल, सु अलकें ।
तामें पिय-संगम के, सुंदर श्रम-कन झलकें ॥
पोंछति अपने अंचल, रुचिर दृगंचल तिय के ।
पीक-भरे सु कपोल लोल, रद-छद जहँ पिय के ॥
तिन्हैं लै तहँ तें बहुरि-बहुरि जमुना-तट आईं ।
जहँ नँद-नंदन जग-बंदन पिय लाड़ लड़ाई ॥

तृतीय अध्याय

कहन लगीं अहो कुँवर कान्ह ! ब्रज प्रगटे जब तें ।
अवधि-भूत इंदिरा अलंकृत ह्वै रही तब तें ॥
सब कौं सब सुख बरसत, ससि ज्यों बढ़त निहारी ।
तिन में पुनि ये गोप-बधू, पिय निपट तिहारी ॥
नैन-मूँदिबो महा अस्त्र, लै हाँसी-फाँसी ।
मारत हौ कत सुरतनाथ, बिन मोल की दासी ॥
बिष-जल तें, ब्याल तें, अनल तें, दामिनि-झर तें ।
क्यों राखीं, नहिं मरन दईं, नागर नगधर तें ॥

कोउ पिय-भुजन सौं लपटी, मटकी नाहिं नवेली ।
जनु सुंदर सिंगार-विटप, लपटी छवि-वेली ॥
कोउ कोमल पद-कमल, कुचन-विच राखि रही यौं ।
महा कृपन धन पाइ, छती सौं लाइ रहत ज्यौं ॥
कोउ पिय रूप-नयन भरि, उर मैं धरि धरि आवत ।
मधु माखी ज्यौं देखि, दसौं दिसि अति छवि पावत ॥
कोउ दसनन दिये अधर-विंब गोविंदहि ताडति ।
कोउ इक नैन-चकोर, चारु मुख-चंद निहारति ॥
कहुँ काजर, कहुँ कुंकुम, कहुँ इक पीक लगी वर ।
तहँ राजत नँद-नंद-चंद, कंदर्प - दर्प - हर ॥
वैठे पुनि तिहि पुलिन, परम आनंद भयौ है ।
छविलिन अपनौ छादन, छवि सौं विछाइ दयौ है ॥
एक एव हरि देव, सवै आसन पर वैसे ।
किये मनोरथ पूरन, जाके उपजे जैसे ॥
ज्यौं अनेक जोगेस्वर, हिय मैं ध्यान धरत हैं ।
इकहि वेर इक मूरति, सब कौं सुख वितरत हैं ॥
जोगी-जन वन जाइ, जतन करि कोटि जनम पचि ।
अति निर्मल करि राखत, हिय मैं आसन रचि रचि ॥
कहूँ छिनक नहिं जात, नवल नागर नगधर हरि ।
व्रज-जुवतिन के अंवर पर, वैठे अति रुचि करि ॥
कोटि कोटि व्रह्मांड, जदपि इकली ठकुराई ।
व्रज-देविन की सभा, साँवरे अति छवि पाई ॥

सब सुंदरि के सनमुख, सुंदर स्याम बिराजै ।
ज्यों नव दल-मंडल में, कमल-कर्निका भ्राजै ॥
दुकूल सारी नवल डारि, नंद-लाल पियहि सब ।
प्रीति-रीति की बात, मन में मुसकाति जानि सब ॥
इक भजते कौं भजैं, एक बिन-भजतें भजहीं ।
कछुक पाछे तें फिरत आहिं, जे उहटत तजहीं ॥
जदपि जगत-गुरु नागर नगधर नंद-दुलारे ।
तदपि गोपिन के प्रेम-बिबस, आपने मुख हारे ॥
तब बोले ब्रजराज-कुँवर, हौं रिनी तुम्हारौ ।
अपने मन तें दूरि करौ, यह दोस हमारौ ॥
कोटि कल्प लगि तुम प्रति, प्रति-उपकार करौं जौ ।
हे मनहरनी तरुनी, उरिनी नहिं होउ तौ ॥
सकल बिस्व अपबस करि, मो माया सोहति है ।
प्रेम-मई तुम्हरी माया सो मोहिं मोहति है ॥
तुम जो करी सो कोउ न करै, सुनि नवल किसोरी ।
लोक-बेद की सुदृढ़ सृंखला तृन सम तोरी ॥

पंचम अध्याय

सुनि पिय के रस-बचन, सकल तिय छाँड़ि दयौ है ।
हँसि हँसि अपने कंठनि, लाल लगाइ लयौ है ॥
परमानंद जहँ, सुमिरत यह चिंतन-फल-दायक ।
यह रसरास-सिंगार, सबहि सुख-दायक नायक ॥

इहि विधि विविधि विलास बिलसि सुख कुंज सदन के ।
चले जमुन-जल क्रीडन, व्रीड़न कोटि मदन के ॥
उरसि मरगजी-माल, चाल मद गज ज्यौं मल्हकत ।
घूमत रंग-भरे नैन, गँडस्थल श्रम-कन झलकत ॥
जाइ जमुन-जल धँसे, लसी छवि जात न बरनी ।
विहरत जनु गजराज, संग लिये तरुनी करिनी ॥
तियन के तन जल-मगन, वदन जव यौ छवि छाये ।
फूलि रहे जनु जमुन, कनक के कमल सुहाये ॥
मुख-अरविंदन आगे, जल-अरविंद लगैं अस ।
भोर भये भवनन के दीपक, मंद परत जस ॥
मजुल अंजुलि भरि भरि, पियकौ तिय जल मेलहिं ।
जनु अलि सौ अरविंद-वृंद, मकरंदन खेलहिं ॥
छिरकत है छवि छैल, जमुन-जल अंजुलि भरि भरि ।
अरुन कमल-मंडली, फाग खेलत जनु रँग करि ॥
रुचिर दृगंचल चंचल, अचल मैं झलकत अस ।
सरस कनक के कंजन, खंजन जाल परत जस ॥
जमुना जल मैं दुरि-मुरि, कामिनि करत कलोलैं ।
मानहुँ नव घन मध्य, दामिनी दमकति डोलैं ॥
कमलन तजि तजि अलि-गन मुख-कमलनि आवत जब ।
छवि सौ छबिली बाल, छिपत जल मै बुड़कनि तब ॥
कबहुँक मिलि सब बाल, लाल छवि सौ छिरकत अस ।
मनसिज पायौ राज, आज अभिषेक होत जस ॥

निरखी सुन्दर जोति गोपि मनमोहन भावै ।
तान बैन की छबि, कवि पै कछु कहत न आवै ॥ ५६०
भीजे स्याम नैन मनहि छिपत छबि कहाँ कही है ।
नैनन के नहिं बैन, बैन के नैन नहीं है ॥
नीर निचोवत अंचल, देखि अधीर भये तनु ।
गगन-बिछुरन की पीर, नीर रोवत अँसुवन जनु ॥
तब तब छुट नाम लियें, कुँवर वर आज्ञा दीनी । ५६५
निरखत अंतर-भाव, तिन नहँ करुना कीनी ॥
अपनी अपनी गति के, पहिरे बसन बनी छवि ।
जग मैं जे मोहन आप, तिन की जग-तिय मोहनि सब ॥
ऐसें रस की जेतिक, परम मनोहर राती ।
मोहन नागर रसिक पिय, प्रति छिन नई नई भाँती ॥ ५७०
चलत महरत कुँवर कान्ह बर घर आये जब ।
गोपन आपनी गोरी, अपने ढिंग मानी तब ॥
नित्य नाम रसनीधि, नित्य गोपीजन-वल्लभ ।
नित्य निगम यों कहत, नित्य नव तन अति दुर्लभ ॥
यह उज्ज्वल रस माल, कहत कछु कहि नहिं आवै । ५७५
सेस सहस्रमुख गावै, अजहूँ अन्त न पावै ॥
जिन रस ही मन ध्यावै, ताहू नाहिं जनावै ।
ब्रह्मा, सनंदन, नारद, सारद जनि जी आवै ॥
जदपि [illegible] [illegible] [illegible], नियति निसि दिन ।
पर रस पावैं नहीं, कबहूँ नहिं पायौ तिन ॥

अज अज हूँ रज वाछत, सुदर वृंदावन की।
सो तनकहु नहि पावत, सूल मिटत नहि मन की ॥
विन अधिकारी भये, नहिन वृंदावन सूझै।
रेनु कहाँ तें सूझै, जब लगि वस्तु न बूझै ॥
निपट निकट ज्यौं घट मैं अंतरजामी आही।
विषय-विदूषित इंद्री, पकरि सकैं नहि ताही ॥
जो यह लीला गावै, चित दै सुनै-सुनावै।
प्रेम-भक्ति सो पावै, अरु सब के जिय भावै ॥
हीन-श्रद्ध, निदक, नास्तिक, हरि - धर्म - वहिर्मुख।
तिन सौं कवहुँ न कहै, कहै तौ नहिन लहै सुख ॥
भक्त जनन सौं कहै, जिन के भागवत-धर्म-वल।
ज्यौं जमुना के मीन, लीन नित रहत जमुन-जल ॥
जदपि सप्त-निधि भेदनि, जमुना निगम वखानैं।
ते तिहि धारहि धार रमत, जल छुवत न आनैं ॥
रसिक जनन सौं संग करै, हरि-लीला गावै।
परम कात एकात, परम रस तवही पावै ॥
यह उज्जल रस-माला, कोटि जतन करि पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ, इहि तोरौ मति कोई ॥
श्रवन - कीर्तन - सार, सार सुमिरन कौ है पुनि।
ग्यान-सार, हरि-ध्यान-सार, श्रुति-सार गुथी गुनि ॥
अघ-हरनी, मन-हरनी, सुदर प्रेम-वितरनी।
'नंददास' के कंठ बसौ, नित मंगल-करनी ॥